

तुम्ही से

नव अस्तित्व की तलाश

द्ववितीय अंक **वसंत 2016**

मेहमान सम्पादकीय - डॉo विजय शंकर

चलिये शाश्वत गंगा की खोज करें **अतिरिक्त संपादकीय**

बुल्ले शाह का कलाम “इल्मो बस करीं ओ यार”

इंदु लेखी की कविता

कहानी -स्वर्ण जे. ओमकार

अंधविश्वास ले रहा है लक्ष्मी के वाहन की जान

हमें मालूम है जन्नत की हक़ीक़त (सम-सामयक चर्चा

प्रस्तुत अंकः ‘ज्ञान की सीमा’

संपादन– स्वर्ण जे. ओमकार

डिजिटल संस्करण

2016-2

Hindi Literary Mar-May 2016



"तुम्ही से" का प्रस्तुत अंक एक विचारोत्तेजक विषय "ज्ञान की सीमा" (Limitations of knowledge) पर आधारित है. हम ने इसे एक सामाजिक मनोविज्ञानिक व दार्शनिक विश्लेषण की तरह प्रस्तुत किया है. हमें आशा है कि प्रस्तुत अंक आप को "अलग तरह की अंतर्दृष्टि " प्रदान करेगा. यह अंक "आप को" (पाठक को) समर्पित है. --तुम्ही से...

क्या **कहां**

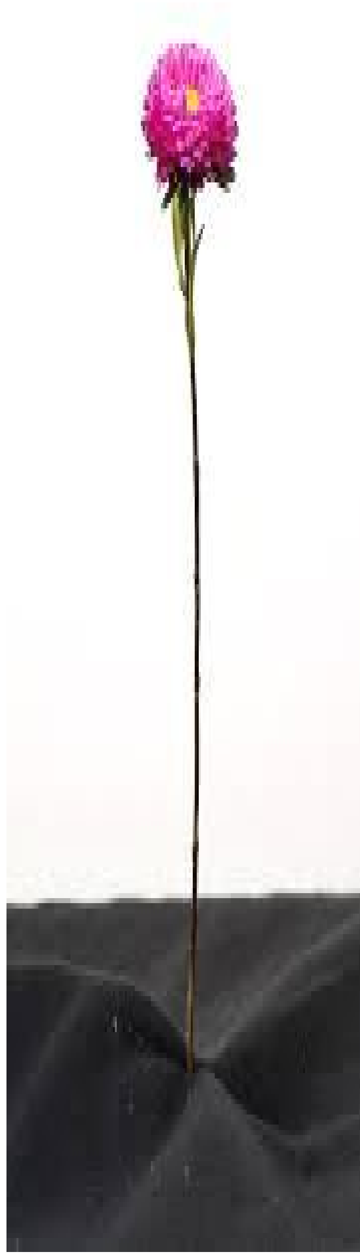
क्या कहां



पांच इन्द्रियों ने एकत्रित किया ज्ञान. ज्ञान ने डेरा जमाया स्मृति में. समृति ने दरवाजे बंद किये चेतना के, ज्ञानइन्द्रियों के. ज्ञान बासी हुआ तो अनुभूति का दरवाज़ा खुला. अनुभूति ने बासी गले सड़े अनुभवों को उखाड़ फेंका. चेतना नयी हुई. ज्ञान विस्मृत हुआ - इसी अंक से

‘तुम्ही से’

ज्ञान की सीमा



संक्षिप्त उदेश्य

विशुद्ध भौतिक्ता
अंत्रीव या बाह्य
विशुद्ध चेतना का प्रवाह
मन में
देह में
मष्तिश्क में
न कोई पूर्वाग्रह
धर्म या रीति का
न कोई पूर्व–निर्धारित
शास्त्र ज्ञान
मन या अध्यात्म का
न कोई मार्गदर्शन
न नतीजा या निष्कर्श
केवल प्रश्न
केवल प्रयत्न
तब तक
जब तक न हो
चंचल मन
सीमा पार जाने को तैयार
जब तक न हो
विशुद्ध चेतना का आभास
जब तक न मिले
अंतिम अंत्र–दृष्टि
‘तुम्ही से’

e-mail – jswaran09@gmail.com

प्रस्तुत अंक : ज्ञान की सीमा

अंधम तमाह प्राविसंति ये 'अविद्यम उपासते
ततो भया ईवा ते तमो या उ विद्यायां रताः
यदि आप अज्ञान की पूजा करते हैं तो निस्संदेह अंधेरा ही आप का भविष्य है अगर आप ज्ञान की पूजा करते हैं तो और अधिक से अधिक अंधेरा आप का भविष्य है.... ईशा उपनिषद्



यह ज्ञान की पूजा क्या है? कैसे आप ज्ञान की पूजा व रूचि से अधिक से अधिक अंधेरे में प्रवेश करते है?
बुल्लेह शाह का कथन है - इल्मो बस करीं ओ यार! ज्ञान या इल्म ही बड़ी वस्तु नहीं दुनिया में. अध्यात्म में आगे बढ़ने के लिए. ज्ञान पूरी ज़िंदगी का चेतना का एक छोटा पार्ट है. बड़ा पार्ट है चेतना की चेतनता से दुनिया में विचरना.

मान लें आप के पैर में एक कांटा चुभ जाता है। आप छोटे कांटे को बाहर निकालने के लिए एक बड़े कांटे का उपयोग करते हैं। उस बड़े कांटे का बाद में आप क्या करते हैं? आप इसे दूर फेंक कर, चलते बनते है। बस इतना ही ज्ञान का उपयोग है। आप अज्ञान के छोटे कांटे को बाहर खींचने के लिए ज्ञान का बड़े कांटे का उपयोग करते हैं. फिर आप दोनों काँटों को फेंक कर आगे बढ़ जाते हैं. ऐसा क्यों है कि कुछ समय के बाद अज्ञान के साथ ज्ञान को भी फैंक देने में ही भलाई है?
बुद्ध ने कहा था यदि आप नदी पार करने के लिए नाव का उपयोग करते हैं, लेकिन एक बार आप ने नदी पार कर ली है, फिर आप अपने सिर पर नाव नहीं ढोते हैं आप इसे पीछे छोड़ देते है। यही हो रहा है दुनिया में. ज्ञान के संग्रह - बड़े बड़े ग्रन्थ, बड़ी बड़ी पुस्तकें केवल पूजास्थलों का हिस्सा हैं. चंद मानव उन ग्रंथों को सर पर उठाए खड़े है और शेष नमन की मुद्रा में ग्रंथों को देख रहे हैं. आप पढ़ भी लें तो उन पर सवाल नहीं कर सकते. उन के बिछाये धारणाओं के जाल को तोड़ नहीं सकते. अपने ही बिछाये जाल में उलझ चुके हैं हम. समस्त ज्ञान किसी और चीज़ की और इशारा करता है . लेकिन हम सिर्फ वाक्यों को सूक्तिओं को रट्टा लगाने में लगे है . किस राइटर ने क्या कहा. गीता के क़ुरान के ग्रन्थ साहिब के श्लोकों को रट्टा लगाने में लगे है. सो इस ज्ञान की सीमा निर्धारित है. जो जान लिया गया है - हम उसे पूजने में लगे है .जो अभी जाना नहीं गया उस की और देखते तक नहीं .

कैसे अधिक से अधिक ज्ञान अधिक से अधिक अंधेरे में मानव को धकेल रहा है?
ज्ञान के बहुत से खतरों में से एक है आप का अहम्. आप को यह विश्वास हो जाता है कि ज्ञान पर ध्यान केंद्रित करने से आप को अधिक से अधिक प्राप्त होगा। यह एक ऐसी स्थिति

है जहां व्यक्ति स्वयं को 'जानकार' महसूस करने लगता है और एक फूला सीने और एक फूला हुआ अहंकार आप के साथ चारों ओर चलता है। कभी कभी ज्ञान हमें विनम्र होने के लिए कहता है जो हमें किताबें पढ़ कर याद दिलाया जाता है। तब हम विनम्र होने का नाटक करते है, तो यह एक नाटकीय विनम्रता है जिसे हम ओढे रहते है. जबकि भीतर से हम तीव्र अहम् से भरे रहते है कि हमें बहुत ज्ञान है.

हमारा प्रेम विवेक और बोध से है. होना भी चाहिए. पूर्वार्जित ज्ञान से नहीं. प्राचीन समय से ही मानव ज्ञान की असीम पिपासा लिए हुए है. वह पूर्व अर्जित ज्ञान की पूजा में तल्लीन नहीं रहता था. वे मानव चेतना को हरदम नया रखते थे. वे उस ज्ञान में रूचि रखते थे जो अभी जाना नहीं गया है. उस ज्ञान में नहीं जो जान लिया गया है. पहले से जाना हुआ ज्ञान तो बंधन है आप का. हमारे पूर्वज प्रथम श्रैणि के ज्ञानवान थे. वे ऐसे ज्ञानवान थे जिनके बोध का उद्गमस्थल बाहरी संसार नहीं उनका अपना अंतस् था. वे अंतर-आत्मा की गहन् खामोशी से बोलते थे. पर उनकी एक समस्या थी जो आज हम सब की है. सत्यता (reality) की अवधारणा (concept) इसी संसार में बनीं और संसार के लोगों की समझ के अनुरूप ही कही या लिखी जाने लगी. उसी धारणा के अनुरूप सत्य को अभिव्यक्त करना उन की, hamari बेबसी है. वे लोगों की भाषा के अनुरूप बात करते थे. लेकिन हरदम नयी व उत्कृष्ट बात करते थे. उन की बात को श्रुति (या revelation या वेद) कहा जाता था. ये श्रुतियां उन के शुद्ध अंतस का ज्ञान था.

दूसरी श्रैणि के विचारवान सत्य के खोजी नहीं थे. वे केवल पूर्व घोषित ज्ञान के अनुगामी (followers) थे. वे पहले से बिछी बिसात पर खेलते थे. उन्होंने प्रथम श्रैणि के विचारवानों द्वारा व्यक्त अवधारणा (concept) के केवल बाह्य अर्थो को ग्रहण किया और बुद्धि के इसी विस्तार को बढ़ावा दिया. इन की विस्तृत लेखनी को समृति साहित्य कहा जाने लगा. जिन में रामायण , महाभारत या पुराण आ जाते है.

इससे अगली श्रैणि के विचारवानों ने तो इन अर्थों को भी छोड़ दिया और केवल बाह्य् शब्दों को ही उत्साह से अपनाया और इन्हें सिद्धांतक रूप दे दिया और उन सिद्धांतों को ठोस मुर्तिओं, ठोस शब्दों में ढाल दिया एवं ग्रंथों में बाँध दिया. तब बुद्धि अवधारणायों के ठोसाकार में जकड़ गई.

आज भी कभी कभी कोई मौलिक विचारवान पैदा होता है जो तमाम पुरानी अवधारणा को तोड़ देता है.यह सारा प्राप्त किया ज्ञान केवल एक पुरानी मनोस्मृति है. यह चेतना की तीक्ष्णता को कुँठित करता है. उसे अतीत में रहना सिखाता है. उसे उजड्ड व रुखा बनाता है. उसे मंदबुद्धि बनाता है. उसे नयी धारणा में रूचि रखने को रोक देता है.

निवेदन–स्वर्ण ओमकार ***कला--*** सैली बलविंदर

ऋषि बात नहीं करते, तेजस्वी लोग बात करते हैं और मूर्ख बहस करते हैं।
रामधारी सिंह दिनकर

तुम्ही से...

मानवीय चेतना का दर्पण

द्वितीय अंक **वसंत 2016**



संपादक की कलम से...

मान्यवर...

...मानव सभ्यता के शिशु काल से ही मानवता दो श्रेणियों में बट गई. एक श्रेणी में वे प्रबुद्ध मानव हैं, जो मन की गहराई में उतरते हैं, जो मानव के किये पूर्व कार्यों का अवलोकन करते हैं. उसे रास्ता दिखाते हैं. दूसरी श्रेणी में शेष सभी मानव जो अपने कर्म और अपनी इच्छायों के जाल में उलझे हैं, मन से ज्यादा रास्तों पर उतरते हैं. ये मानव कर्मशील हैं- कहा जाता है.

...इस प्रबुद्ध श्रेणी के मानव भी कर्मशील हैं? हाँ क्योंकि उन की कर्म भूमि उन का मन बुद्धि व चेतना है, वे प्रकृति के महान् पुत्र हैं जो उस के भेद जानने में अपना ज्यादा समय लगाते हैं और उस की सौगातों का आनंद उठाने में कम. यह प्रकृति का क़र्ज़ है हम पर कि उसने मानव को इतना बढ़िया मष्तिषक दिया है और वे प्रकृति की कोख़ में गहरे उतर कर उस क़र्ज़ को उतारने में लगे हैं. प्रकृति के अंतस् में उतर कर वे इस तथ्य से एकमत होते हैं कि हम प्रकृति से अलग नहीं. तो क्या प्रकृति ही प्रकृति की खोज कर रही है? जब वे गंभीरता से प्रकृति के ऐसे गहन सत्य खोज निकालते है तो शेष लोग उनका अनुगमन करते हैं, उन से लाभान्वित होते हैं. ...पर दुर्भाग्यवश से यह बात अधूरा सत्य है. हमेशा ही ऐसा हो यह ज़रूरी नहीं. ये तथाकथित प्रबुद्ध मानव शेष समाज से निष्काशित प्राणि है. जीवन को बदल सकने योग्य उस का परिज्ञान उन की अंत्रदृष्टि केवल धूल चाटती पुस्तकों का हिस्सा हो कर रह जाती है. या उन पुस्तकों का जिन्हें केवल पूजातुल्य माना जाता है और पूजा के समय ही उन का पठन या गान होता है. उन में संकलित महान् सत्यों को लोग अपनी मन बुद्धि से दूर रखते हैं. लोग इस बुद्धिजीवी वर्ग के काम से अनजान रहते हैं.

...हमारे आस-पास ऐसे लोगों की कमी नहीं जो अर्थ चारे में उलझी अपनी अधूरी दृष्टि से साधारण और प्रबुद्ध मानव में अंत्र नहीं कर पाते. आत्म-विवेचना से नितांत दूर ये लोग विष्व के प्रत्येक बड़े धर्म के "masses" मे कहलाते हैं और यही लोग मानव निर्मित मानव संकटों का कारण बनते हैं.

...दूसरी ओर हमारा यह प्रबुद्ध मानव भी कलियुग-ग्रस्त हो गया है. तमस् का यह युग उस की बुद्धि को भी भ्रमित कर रहा है. मष्तिषक का पसीना बहा कर की कमाई को वह अति- साधारण दुनियावी कार्यों में लगा रहा है.

...उसने अब ऐसी विद्यायों का समर्थन शुरू कर दिया है जिन में न अध्यात्मिक ईमानदारी है और न वैज्ञानिक सच्चाई. ज्योतिष, शनि पूजा इत्यादि -ये सब मनुष्य का शोषण करने की विद्याएँ हैं जो तमस् के इस युग में मानव में और अंधापन ला रही हैं. तमस् के इस युग में अधिक ज्ञान ही अज्ञान का कारण बन रहा है. मानवीय मन कभी भी कपट नहीं छोड़ पाया. कपट और ज्ञान ने मानवीय मन में अब गहरा संयोयन कर लिया है. मूलतः यह कपट है जिसमें मानव की रूचि है. ज्ञान और ज्ञानी जनों से लोगों का विश्वाश उठ रहा है. ज्ञान तकनीकी हो या अध्यात्मिक अब केवल मानवीय शोषण का तरीका है.

...प्रावीन काल में ही ऋषि लोगों ने “ज्ञान की इस सीमा” को समझ लिया था. वेद यानि ज्ञान का अर्जन से वेदांत यानि ज्ञान का अंत तक जाने वाले उन महान् मानवों ने केवल आत्मानभूति को महान्तम ज्ञान माना है. लेकिन यह एक ऐसा ज्ञान है जिस के संबंध में कभी एकमत नहीं बन पाया है. जीवन की समग्रता का ज्ञान, केवल बौद्धिक ज्ञान नहीं बल्कि परिज्ञान ; बुद्धि नहीं आत्मा जिससे प्रभावित हो, भीतरी व बाहय् दोनो, पर्यावरण जिस से अलग नहीं ही समग्र आत्मानभूति है.

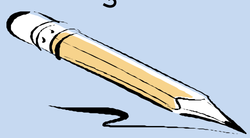
...प्रस्तुत अंक से हमारा प्रयोयन यही है. सूचना स्मरणशक्ति व तकनीकी बौद्धिक्ता का यह त्रयोग मानवीय नसल के लिये घातक बन रहा है. यह केवल उस में प्रतिस्पर्धा की भावना को बढ़ावा दे रहा है. इस भावना से प्रेरित वे मानवीय संसाधनों को बेदर्दी से लूटते हैं. एक दूसरे से आगे बढ़ने की यह होड़ हमारी पृथ्वि व पर्यावरण को कितना गहरा नुकसान पहुंचा रही है इस का अंदाज़ा लगाना आसान नहीं. हम अपनी ही आगामी नसल को क्या एक ठूंठ पृथ्वि दे कर जायेंगे?

... "तुम्ही से" द्वारा ज्ञान की सीमा की चेतना को, पृथ्वि व पर्यावरण की चेतना को जन-मानस् तक पहुंवाने में हमें आप के आशीर्वाद की जरूरत है. हमें पृथ्वि पर्यावरण चेतना व आत्मानभूति जनक आप की रचनायों की जरूरत है.

... "तुम्ही से" के आगामी अंकों- ‘परमात्मा है क्या’, चेतना है क्या’, ‘क्या भला क्या बुरा’ इत्यादि से सबंधित आप की रचनायों सादर आमंत्रित हैं.

"तुम्ही से"
कृष्णा स्वर्ण

प्रस्तुत अंक : ज्ञान की सीमा



मेहमान सम्पादकीय

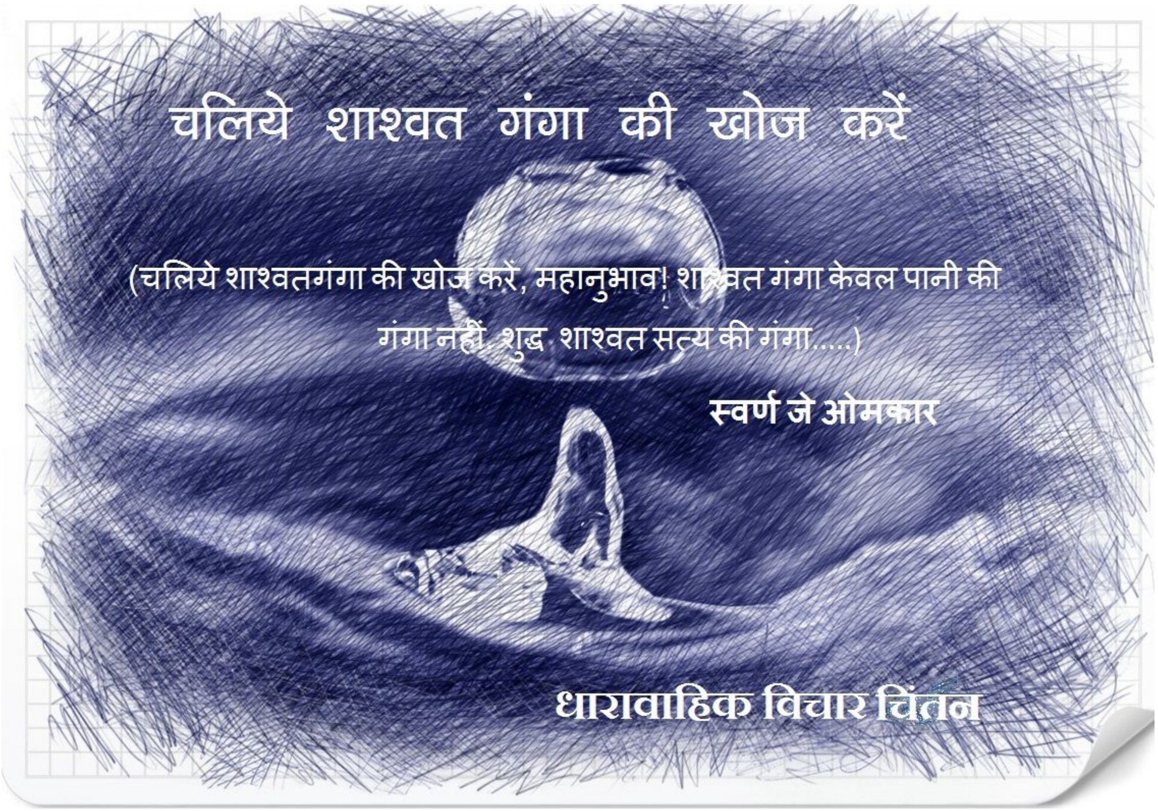
- डॉ० विजय शंकर

इसमें कोई संदेह नहीं कि विज्ञान, यांत्रिकी और विविध तकनीकि प्रयोगों ने मानव जीवन को बहुत सरल और सुगम बना दिया है पर इसमें भी संदेह नहीं कि आदमी का जीवन काफी कुछ यंत्र-तुल्य एवं यंत्र-वत हो गया। शहरी जीवन में पर्यावरण की समस्या , स्वांस लेने के लिए स्वच्छ वायु का अभाव अत्याधिक आद्यौगिक उन्नति का ही परिणाम है। यूं भी कह सकते हैं कि उद्योगों को एक ही स्थान पर कुछ महानगरों में ही केंद्रित कर देने से आद्यौगीकरण को हम लाभ पहुंचाने में सफल तो हुए पर कहीं मानव जीवन को प्रकृति से ओतप्रोत जीवन से वंचित कर हम बहुत बड़ी भूल कर बैठे हैं। महानगरों के स्वास्थ्य सम्बन्धी आंकड़े तो यही संकेत करते हैं कि वहां के अधिकाँश निवासी स्वांस और प्रदूषण जनित रोगों से कितने गंभीर रूप से ग्रस्त और त्रस्त हैं।

जीवन के हर क्षेत्र में तकनीकि का प्रयोग स्वयं जीवन के लिए कितना सार्थक है , आइये इस पर विचार करते हैं। आज से लगभग दो दशक पूर्व बाॅयो-टेक्नॉलजी विषय की बड़ी धूम थी। चूँकि मेरा सम्बन्ध उच्च शिक्षा विभाग से ही रहा है और मेरे दाइत्वों में नवीन महाविद्यालयों का खोला जाना और मान्यता के प्रकरणों का निरीक्षण करना भी सम्मलित था, अत: मैंने यह देखा था कि इक्कीस्वीं शताब्दी के कुछ प्रारम्भिक वर्षों में बायोटेक्नॉलजी विषय की मान्यता हेतु बड़ी मात्रा में आवेदन आते थे। एक जूनून सा था कि इस बाॅयोटेक्नॉलजी से क्या-क्या हो जाएगा, टमाटर चार गुना बड़ा होगा, और सभी सब्जियां भी खूब बड़ी बड़ी और प्रभूत मात्रा में होंगी। कृषि उत्पादन में एक तरह की क्रान्ति आ जाएगी। उस तकनीकी क्रान्ति को तो चलिए जाने देते हैं पर जो हुआ वह यह है कि सब्जियों के साथ और्गेनिक सब्जियां अलग और काफी मंहगी बिकने लगी। बाॅयोटेक सब्जियों में स्वाद आ नहीं रहा है, उनकीं पौष्टिकता भी विचारणीय है, और सच यह है कि ऑर्गेनिक सब्जियां अपने महंगे रेट के कारण साधारण आदमी की पहुँच से बाहर हैं। और तो और अब और्गेनिक घरों के भी विज्ञापन आ रहे हैं। ऐसे में क्या हमारे लिए यह सोचना आवश्यक नहीं हो जाता है कि विज्ञान का हर किसी क्षेत्र में तकनीकी प्रयोग हमारे जीवन के लिए कितना हितकारी है? इस प्रकार का ज्ञान हमारे हित में हैं या हम पर भारी है?

यह भी विचारणीय कि क्या ज्ञान का लक्ष्य केवल धन-अर्जन है, किसी भी कीमत पर, मनुष्य के स्वास्थ्य और जीवन के मूल्य पर भी? ज्ञान का वास्तविक क्षेत्र क्या है? उसकी कहीं कोई सीमा रेखा है या नहीं?

डॉ०विजय शंकर (यू.एस.ए.)





स्वर्ण जे ओमकार

अभी तक कुछ धारा तो बची है-साफ़! स्वच्छ! निर्मल!

अभी तक कुछ ज्ञान तो बचा है-

शुद्ध! शाश्वत! महान्तम सत्य!

मानवीय कुण्ठायों, मानवीय अहम्, और मानवीय मन से अप्रभावित! जो प्रकृती के नियमों के अंत्रगत ही अंतस् में उतरा और जैसा आया वैसा बांट दिया गया. (प्रथम प्रकरण से..)

(द्वितीय प्रकरण)

पूर्व कथा:

व्यथित गंगा ज्ञानि से संबोधित है.

गंगा की व्यथा ने ज्ञानि के हृदय को झजकोर दिया है. गंगा उसे बताती है मनुष्य की तमाम विसंगतियों, मुसीबतों, परेशानियों का कारण उस का ओछा ज्ञान है जिसे वह अपनी तरक्की का प्रयाय मान रहा है.

इस ज्ञान ने उसे प्रकृति से दूर कर दिया है. वह प्रकृति को अपना लक्ष्य नहीं लक्ष्य का साधन मानता है.

पृथ्वि पर मानव के अपने स्वार्थमय कई लक्ष्य हैं. जैसे मन लुभावनी क्षणिक चकाचैंध से प्रेरित भौतिक प्रगति जिस के लिये वह प्रकृति की महत्वपूर्ण संपदा नदियों नालों के समीप अपने लिये सौंद्धर्य प्रसाधनों इत्यादि के बड़े बड़े उद्योग लगाता है. उन से निकलता रासायणक ज़हर नदियों नालों को प्रदूषित करता है और पेय पदार्थों द्वारा वापिस उसी के शरीर में प्रवेश कर रहा है.

और भी लक्ष्य हैं मानव के जैसे वह अध्यात्मिक उत्थान के नाम पर भौतिकी सुख व चकाचैंध भरे पूजा स्थल बनाता है जो उस के तथाकथित 'परमात्मा' व 'परमात्मा के अवतारों' स्वर्ण गृह व परमात्मा के पुजारियों के विलास गृह बन गये हैं.

उस का यह तथाकथित 'परमात्मा' उस की असुरक्षा की भावना से उपजा है. उस ने इस 'परमात्मा' को भी अपने व्यापार व भौतिक तरक्की का साधन बना लिया है.

इस सारे पचड़े में मनुष्य की बड़ी विसंगति यही है कि वह अपने इस 'परमात्मा' से भी उसी तरह भयभीत है जिस तरह अपनी असुरक्षा की भावना से उपजे देवी देवों शनि, राहु, केतु आदि से. नदियां भी उस के लिये इसी तरह भय का प्रतीक हैं, उन्हें देवियां मानता है पर उन के दूषित जल के रासायणक प्रभावों को उन का प्रकोप मानता है और भौतिक प्रभाव यानि बाढ़ इत्यादि से भयभीत है.

अपनी भौतिक व मानसिक तुष्टि के लिये मानव के जो भी पृथ्वि पर लक्ष्य हों पर अभी तक प्रकृति का सौंदर्य और उस की महत्वपूर्ण संपदायों को अपने व अपने बच्चों के भविष्य के लिये बचाना उस का लक्ष्य नहीं बना है.

इसी ओछे ज्ञान से मानव को निकालना और सही व ज्ञानोचित अनुभूति का संप्रेष्ण करना अब 'ज्ञानि' का लक्ष्य है. इस के लिये उस ने मानवीय अधिवासों में जा कर प्रवचन देने का मन बना लिया है.

प्रस्तुत श्रंखला उन्हीं प्रवचनों का लिखित रूपांत्र मात्र है....

ज्ञानी का दूसरा प्रवचन-2

देश की भूमि पर उतरी है गंगा, स्वर्ग से, बादलों के शिखर से. गंगा का उद्गम स्थल है स्वर्ग यानि जल से भरे बादल. जल की नमी ले जाती हवा. पूर्व से पश्चिम की और बहती हवा. पुरवाई. सदियों से लोग गाते रहे हैं पुरवाई के गीत, नग़मे. कितनी बाढ़ आये बादल बरसें, घर ढहें, जीवन बिखरे, पृथ्वी जल मगन हो- बरखा ने, पानी ने जल ने कभी परेशान नहीं किया मानव को. परेशान किया तो - बरखा के न आने ने, सूखे ने, रेत कणों के अम्बारों ने, मरुस्थलों ने.

देश की भूमि पर उतरी है गंगा, स्वर्ग से, बादलों के शिखर से. मन की भूमि पर उतरी है वही गंगा ज्ञान की गंगा अनुभूति के शिखर से. पांच इन्द्रियों ने एकत्रित किया ज्ञान. ज्ञान ने डेरा जमाया स्मृति में. समृति ने दरवाजे बंद किये चेतना के ज्ञानइन्द्रियों के. ज्ञान बासी हुआ तो

अनुभूति का दरवाज़ा खुला. अनुभूति ने बासी गले सड़े अनुभवों को उखाड़ फैंका. चेतना नयी हुई. ज्ञान विस्मृत हुआ.

बात तब की है जब गंगा केवल बादलों में बसी थी. बादल जो सुखी मरू भूमि को छोड कर आगे निकल जाते थे. उन का यह खेल सूखे मरू में बसने वाले समझ न पाते थे. दान पुन्न करते थे. मंदिरों में पूजा अर्चना से ले कर पशु बलि, नर बलि तक की व्यवस्था करते थे.

अनुभूति की गंगा भी मन को ऐसे ही चिढाती थी. मन के मनन की तो पकड में न आती थी. साधना व अभ्यास से कतराती थी. अभ्यासरत मन को ...अभ्यासरत मानव को तो मुंह न लगाती थी.

अभ्यासरत मन केवल स्वयं का पुजारी था अभ्यासरत मानव केवल अहम् का पुजारी था. वह खोज को अहम् से अपनी इच्छा से आगे न ले जा पाता था.

अनुभूति की गंगा केवल अनुभूति में बसी थी. अनुभूति की गंगा तो केवल पर्मानुभूति में बसी थी.

पर्मानुभूति का नियम पर्मानुभूति के ही अधीन था. मन से परे, मनन से भी परे, कहीं शून्य में लीन था.

मन की भूमि तो अहम् में गर्त थी इसी मन को खोना अनुभूति की प्रथम शर्त थी.

अनुभूति तो थी समझ से परे- मन व बुद्धि की सीमा से परे. अनुभूति तो त्रैकालिक थी- अनुभूति तो सर्वकालिक थी. समझ मन की पकड़ में थी- अनुभूति पकड़ में आती न थी. तर्क दलील विचार से परे- कुछ तो था जो बच जाता था. वह अहम् ग्रस्त मन की भूमि को छोड़ आगे निकल जाता था.

ऐसी ही तो थी जल की गंगा. वह तो केवल बादलों में बसी थी. बादलों में बसी गंगा सूखी मरू को छोड़ आगे निकल जाती थी. मानव कितना पसीना बहाये- पसीने से गंगा तो न बन पाती थी.

सूखे मरू में बसे लोग स्वर्ग की ओर ताकते रहते थे. स्वर्ग में बसी गंगा की वे दंतकथायें बनाते रहते थे- 'गंगा तो इंद्र राज्य की अप्सरा है, भैया! वह यूं न धरणि पे आवेगी. कोई भारी उपकर्म करना होगा तभी सूखी धरा कुछ दे पावेगी.'

तो वे किसी भारी उपकर्म की योजना में खो जाते थे. समय और सीमा में बंधे वे लघु मानव किसी महा मानव की कलपना करते सो जाते थे. जो उन के लिये आवारा बादलों को मनाने के लिये तैयार हो जाये. जो उन के लिये सहर्ष पृथ्वी पर गंगा को लाने के लिये तैयार हो जाये.



अनुभूति तो थी समझ से परे-
मन व बुद्धि की सीमा से परे.
अनुभूति तो त्रैकालिक थी-
अनुभूति तो सर्वकालिक थी.
समझ मन की पकड़ में थी-
अनुभूति पकड़ में आती न थी.
तर्क दलील विचार से परे- कुछ तो था जो बच जाता था.
वह अहम् ग्रस्त मन की भूमि को छोड़
आगे निकल जाता था....

या कभी यूं हो जाता कि गंगा आती तो थी धरती पर. परन्तु छुट पुट नालों में बह कर बेकार हो जाती थी. और शेष वर्ष भर जल हीन लोग सूखी मरू को ताकते रहते या उन सूखे नालों को जिन में अमुल्य गंगा बह जाती थी.

ऐसे में किसी भागिरथ सरीखे महामानव का उस सूखी मरू में गंगा लाने को वचनबद्व होना आष्चर्य न था. जो केवल वर्षा ऋतु में ही नहीं साल भर जलहीन लोगों को जल मुहैया करवा सके. गंगा धरणि पर ला सके.

अब स्वर्ग में बसी गंगा के- बादलों में रची गंगा के अपने ही सपने थे वह धरती पर आना न चाहती थी. उस ने तय कर लिया था- यदि प्राकृति के नियमों ने ज़ोर डाला भी तो अपने बादलों को वह कह देगी. पर्वत श्रंखलायों पर पानी बरसायेगी. पेडों के झुंडों पर, या उंची बर्फ लदी चोटियों पर. मैदानों में यहां मानव ने पेडों को काट कर अपमानित किया प्राकृति को, उसे उस की उदण्डता का दंड देगी. बूंद बूंद के लिये तरसायेगी.

धरती पर आने का उस का मोल हिमालय से कम न था. शिव सरीखे हिमालय ने हामी भरी. तो गंगा प्रसन्नतापूर्वक धरती पर आने को तैयार हो गई. बादलों को खींच लाई पर्वतमालायों तक.

खूब बरखा बन कर बरसी. इतना ज़ोर इतना शोर पर कोई धारा न बनी न कोई छुट पुट नाला. पूरी की पूरी समा गई गंगा-महाहिमालय महाशिव की महाजटायों में. पेड पौधों की टहनियों में जडों में लताओं में. उलझ गई गंगा. वनस्पति जगत में. समा गई पूरी की पूरी गंगा.

सब अहम धुल गया पर लहजा नरम न हुआ-
बोली शिव से-'ओफ़ हो, कहां से निकलूं- ओफ़ हो कहां से जाऊं- अरे भाई रास्ता दो'

शिव मुस्कराये- ‘इतनी जल्दी क्या है गंगे? अभी कुछ देर विश्राम करो मेरी जटाओं में मेरे पेडों की पत्तियों में शाखाओं में लताओं में.

ये वन उपवन, ये सहस्रों वन प्राणि, प्यासे हैं तुम्हारे जल के वे व्यर्थ तुम्हें न बहने देंगे. कहीं और न जाने देंगे. अब आई हो तो थोडी सेवा सुश्रा कर लो इनकी. बहने का क्या है -कभी भी बह लेना.'

गंगा नरम पड गई बोली-

‘ओ शिव ! ओ महा हिमालय!! तुम तो अति सुंदर हो. यह तुम्हारा ललाट पर्वतों से उंचा. अंबर से मिला हुआ. वहां सुसज्जित चंद्र तुम्हारी शोभा बढा रहा है. ये तुम्हारे उंचे देवदार के वृक्ष कितने घने हैं. कितने पास पास सटे हैं. अपनी जिद पर डटे हैं. मुझे रास्ता दो भाई. मेरा वचन है- जब मैं बह निकली- तो तुम्हारे सौंदर्य को कम न होने दूंगी. तुम्हारे पगों से बहती रहूंगी- स्वयं को उच्चतम न होने दूंगी. तुम अपने रौद्र से संपूर्ण जगत में महा ऊर्जा भर देते हो. मेरी ऊर्जा पर क्यों बंधन डाल रहे हो. मेरा चंचल स्वभाव है तुम जानते हो. मुझे स्वयं ही में क्यों संभाल रहे हो?

शिव और जोर से मुस्काये-

‘क्यों तड़प रही हो गंगे. तुम तो स्वयं बिखरी पड़ी हो. तुम्हें तो स्वयं को समेटना भी नहीं आता. बिखरी ऊर्जा से तुम महा ऊर्जा की बात करती हो. रास्ता मिल जायेगा तुम्हें-नीचे जाने का क्या है? किसी भी देव तरू की झुकी शाखा को पकडो और बह निकलो. निमन से निमनतर होना बड़ा आसान- उच्च से उच्चतर होना अति कठिन.’

‘परिहास करते हो शिव’, गंगा रूष्ट हुई-

‘अंश हूं तुम्हारा. तुम्हारी ही तरह मेरे लिये निमन क्या उच्चतम क्या. इन देव तरूयों नें खींचा है मुझे पाताल से. इन्होंने ही छोडा है मुझे आकाश में. उस उच्चतम आवस्था में भी मुझे विश्राम नहीं. तुम्हारे ये तरू खींच लायेंगे मुझे. फिर बरसूंगी बरखा बन कर.फिर बहूंगी गंगा बन कर. पहाडों में मैदानों में’

शिव हंसने लगे-

‘पर चेता रहा हूं गंगे फिर न कहना -

शिव का भारी स्वर:

तुम्हें हर्ष न होगा बहने में मैदानों में. यह हिमालय ही घर है तुम्हारा. वहां पार मैदानों में तम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है -हजारों टन मानव मल. मानवीय आबादियों से बहता हुआ. जल व मल प्रबंधन में मानव अभी भी स्हसरों वर्ष जैसा ही है. जल से मल निकालने के लिए मानव अभी तक प्रकृति की चत्रुता पर ही निर्भर है. जल व मल अभी भी साथ साथ बहते हैं, साथ साथ उपयुक्त होते हैं, मानव द्वारा'

'हत्!' गंगा बोलीं, 'कैसी बात करते हो! शिव!
क्या मानव ऐसा है क्या वह कीटों से भी निमनतर है. दुनियां भर के कीट वनस्पति जगत से अपनी इच्छा का एक द्रव्य चुन लेते हैं उसे ले लेते हैं और शेष प्रकृति का नुकसान नहीं करते'

'और गंगे,' शिव का स्वर

'उस चक्षुयुक्त अति ज्ञानि मानव के लिए अभी भी जैविक प्राणि वनचर परिंदे व कीट हैं या जलचरों में मीन या घडियाल. जल में रहते स्हसरों सूक्ष्म प्राणि नहीं. वे उस का ग्रास बनते हैं. बाद में वह उन का. पुनः कहता हूं उस ज्ञानि वैज्ञानि मानव के लिए भौतिक प्रकृति ही सब कुछ है रासायण है प्रकृति में तो प्रकृति की सरदर्दी. रासायणक मल जल व पृथ्वि में मिलाना उस का स्वभाव है. वहां किनारें पर न जाने कितने रासायणक गृह हैं. वह सारा रासायणक मल तुम्हारे पानियों में घुल जाने को तैयार है. तुम्हारे सुक्षमप्राणियों को बेवजह मृत्यु दंड देने को तैयार है.

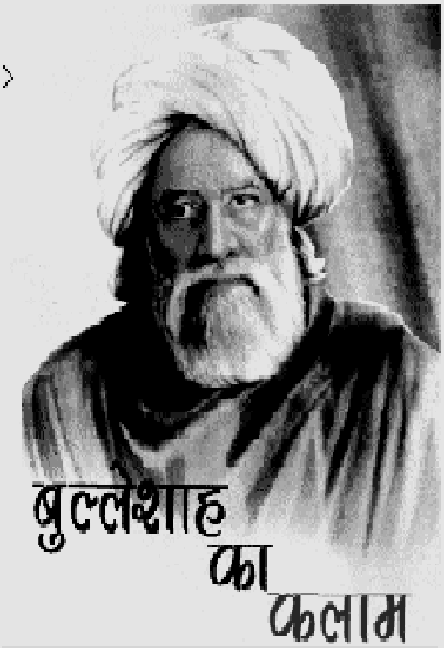
गंगा जी डर गईं
'क्या कहते हो शिव भाई मैं पवित्र जल से मल का नाला बन जाउंगी. मैं तो प्रसन्न थी स्वर्ग में बादलों में. मैं तो आना न चाहती थी धरती पर आह! अब मैं कहा जाउं'

गंगा जी गहन पीडा में ड़ूब गई. ज्ञानी के माथे की रेखायें खिंच गईं. उस की वाणि गले में रूंध गई.
वह आगे कुछ बोल न सका....

(इति द्वितीय प्रकरण) (क्रमश:)

मैं धर्म से छूटकर सौन्दर्य पर और सौन्दर्य से छूटकर धर्म पर आ जाता हूँ। होना यह चाहिए कि धर्म में सौन्दर्य और सौन्दर्य में धर्म दिखाई पड़े। सौन्दर्य को देखकर पुरुष विचलित हो जाता है। नारी भी होती होगी। फिर भी सत्य यह है कि सौन्दर्य आनंद नहीं, समाधि है। - **रामधारी सिंह दिनकर**

कलाम साईं बुल्ले शाह



इल्मो बस करीं ओ यार

ज्ञान के स्थान पर अंतरमुखी प्रेम का एक अक्षर पढ़ने की आवश्यकता है। यदि वह अक्षर पढ़ लिया है तो आत्मा सच्चे अर्थों में ज्ञानी है। यदि प्रेम का अक्षर नहीं पढ़ा गया और संसार के सभी धर्म ग्रंथ पढ़ लिये हैं तो वह अज्ञानी है। बाहर के वाचक ज्ञान से अंतर का आत्मिक प्रकाश प्रकट नहीं होता।
बहिर्मुखी ज्ञान से न आशा तृष्णा की अग्नि शांत होती है, न ही संशय और भ्रम दूर होते हैं और न ही मन निर्मल होता है। अधिक विद्या प्राप्त करने से आत्मा का आध्यात्मिक सफर तय नहीं हो पाता बल्कि मार्ग में कई बाधाएं खड़ी हो जाती हैं।

इसके विपरीत जो प्राणी प्रेम का अक्षर पढ़ लेता है, वह द्वैत से पूर्ण अद्वैत में पहुंच जाता है। उसे सहज ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। वह सहज ही भवसागर से पार हो जाता है, जबकि विद्वान मंझधार में ही गोते खाता रहता है।
बुल्ले शाह का कलाम है:
इल्मो बस करीं ओ यार
इल्म न आवे विच शुमार, इक्को अलफ तेरे दरकार
जांदी उमर नहीं इतबार, इल्मो बस करीं ओ यार
पढ़ पढ़ इल्म लगावें ढेर,
कुरान किताबां चार चुफेर
गिरदे चानण विच अनेर,
बाझ़ां रहबर खबर न सार
पढ़ पढ़ शेख मशाइख होया,
भर भर पेट नींदर भर सोया
जांदी वारी नैण भर रोया,
डुब्बा विच उरार न पार
इल्मो बस करीं ओ यार

संकलन : स्वर्ण ओमकार



संस्कारों ने खत्म कर दी योग्यता- ओशो

मानव समाज में हर जगह हर व्यक्ति के खिलाफ यह अपराध किया गया है। तुम्हें लगातार संस्कारित किया गया है और कहा गया है कि तुम अपात्र हो। क्योंकि इन संस्कारों के कारण मानवता के अधिकांश हिस्से ने किसी भी साहसिक इच्छा को दबा दिया है । बच्चों के माता पिता उन्हें कह रहे थे, 'तुम अयोग्य हो।' उनके शिक्षक उन्हें कह रहे थे, 'तुम अयोग्य हो।' उनके धर्मगुरु उन्हें कह रहे थे, 'तुम अयोग्य हो।' हर कोई उन पर इस विचार को थोप रहा था कि वे अयोग्य थे। स्वाभाविक रूप से उन्होंने इस विचार को स्वीकार किया।
एक बार जब तुम अयोग्यता का विचार स्वीकार करते हो तो तुम स्वाभाविक रूप से बंद हो जाते हो। तुम्हें नहीं लगता कि तुम्हारे पंख हैं, कि सारा आकाश तुम्हारा है, कि तुम्हें सिर्फ अपने पंखों को खोलना है और सारा आकाश अपने सभी सितारों के साथ तुम्हारा है। सवाल यह नहीं है कहीं तुम एक दरवाजा खोलना भूल गये हो, कोई द्वार हैं ही नहीं, न कोई दीवारें हैं। यह अयोग्यता का ख्याल बस एक अवधारणा, एक विचार है। तुम विचार से सम्मोहित हो गए हो।

बहुत शुरू से, सभी संस्कृतियों, सभी समाजों ने सम्मोहन का उपयोग किया व्यक्तियों को नष्ट करने के लिए-उनकी स्वतंत्रता, उनकी अद्वितीयता, उनकी प्रतिभा-क्योंकि निहित स्वार्थों को प्रतिभाशालियों की जरूरत नहीं है, अद्वितीय व्यक्तियों की जरूरत नहीं हैं, उन लोगों की जरूरत नहीं है जो आजादी से प्यार करते हैं. उन्हें गुलामों की जरूरत होती है, और गुलाम बनाने के मनोवैज्ञानिक तरीके केवल यह हैं कि तुम्हारे दिमाग में डाल दिया जाए कि तुम जरा भी लायक नहीं हो, कि तुम्हारे पास जो कुछ है उसके भी तुम लायक नहीं हो, तुम्हें इससे अधिक पाने की इच्छा नहीं करना चाहिए। तुम्हारे पास पहले से जो कुछ है वह तुम्हारी योग्यता से बहुत ज्यादा है।

सम्मोहन निरंतर दोहराव की एक साधारण प्रक्रिया है। सिर्फ एक निश्चित विचार दोहराए चले जाना है और यह तुम्हारे अंदर पैठता जाता है, और यह एक मोटी दीवार बनती है, अदृश्य। न कोई दरवाजे, न खिड़कियाँ; वस्तुत: कोई दीवार ही नहीं होती।

जॉर्ज गुरजिएफ ने अपने बचपन के संस्मरणों में लिखा है...वह काकेशस, दुनिया के एक सबसे आदिम भागों में पैदा हुआ था। वह अभी भी उस स्थिति में है जैसे मानवता जब यह शिकार के द्वारा रहती थी, वहाँ पर अभी खेती भी शुरू नहीं की गई है। काकेशस के लोग को बहुत तेज शिकारी हैं और जो भी समाज शिकार के द्वारा जीता है उसका खानाबदोश होना स्वाभाविक है। वे मकान नहीं बना सकते हैं, वे शहर नहीं बना सकते, क्योंकि आप जानवरों पर निर्भर नहीं कर

सकते। आज वे यहाँ उपलब्ध हैं, कल वे यहाँ उपलब्ध नहीं हैं। निश्चित रूप से तुम उन्हें मारोगे, और तुम्हारी उपस्थिति की वजह से वे भाग जाएँगे, या तो वे मारे जाएँगे या वे भाग जाएँगे।

गुरजिएफ एक खानाबदोश समाज द्वारा पाला-पोसा गया था, तो वह लगभग किसी और ग्रह से आया था। वह कुछ बातें जानता था जो हम भूल गए हैं। उसे याद था कि उसके बचपन में खानाबदोश अपने बच्चों को सम्मोहित करते थे क्योंकि जब वे शिकार करने जाते थे तो वे उन्हें लगातार साथ नहीं ले जा सकते। वे उन्हें कहीं एक पेड़ के नीचे एक सुरक्षित जगह में छोड़ देते। लेकिन क्या गारंटी है कि वे बच्चे वहीं रहेंगे? उन्हें सम्मोहित किया जाना जरूरी था। तो वे एक छोटी रणनीति का प्रयोग करते, और उन्होंने इसे सदियों से इस्तेमाल किया है।

बहुत शुरू से जब बच्चा बहुत छोटा होता है तभी से, वे उसे एक पेड़ के नीचे बिठाते। फिर वे एक छड़ी से बच्चे के चारों ओर एक घेरा बनाते और उसे बताते, 'तुम इस चक्र से बाहर नहीं जा सकते, अगर तुम इससे बाहर जाओगे तो तुम मर जाओगे।'

अब उन छोटे बच्चों को तुम्हारी तरह विश्वास होता। तुम ईसाई क्यों हो?...क्योंकि तुम्हारे माता-पिता ने तुम्हें बताया। तुम हिंदू क्यों हो? तुम क्यों जैन हो? तुम क्यों मुसलमान हो?...क्योंकि तुम्हारे माता पिता ने तुम्हें बताया।

उन बच्चों का मानना है कि अगर वे चक्र के बाहर जाएँगे तो वे मर जाएँगे। वे इस कंडीशनिंग के साथ बड़े होते हैं। आप उन्हें मनाने की कोशिश करें 'बाहर आओ, मैं तुम्हें एक मिठाई दूँगा।' वे नहीं आ सकते, क्योंकि मृत्यु...! यहाँ तक कि कभी-कभी अगर वे कोशिश करते हैं, उन्हें लगता है मानो एक अदृश्य दीवार उन्हें रोकती है, उन्हें घेरे में वापस धक्का दे देती है। वह दीवार उनके दिमाग में ही मौजूद है, वहाँ कोई दीवार नहीं है, वहाँ कुछ नहीं है। वह व्यक्ति जिसने उन्हें घेरे में डाल दिया है जब तक नहीं आता और घेरा मिटा नहीं देता, बच्चे को बाहर नहीं ले जाता, तब तक बच्चा अंदर रहता है।

बच्चे की उम्र बढ़ती रहती है, लेकिन यह विचार अवचेतन में रहता है। तो एक बूढ़ा आदमी भी, अगर उसके पिता उसे चारों ओर एक घेरा बना देते हैं तो इससे बाहर नहीं निकल सकता। तो यह न केवल बच्चे का सवाल है, बूढ़ा आदमी भी अपने अवचेतन में अपने बचपन को वहन करता है। यह एक बच्चे का सवाल नहीं है, खानाबदोश के पूरे समूह ने निकटवर्ती पेड़ के नीचे अपने बच्चों को रख दिया है, और सभी बच्चे पूरे दिन वहाँ बैठे हैं। अपने माता-पिता के वापस आने के समय तक, यह एक ऐसी कंडीशनिंग बन गई है कि कुछ भी हो जाए, बच्चा चक्र नहीं छोड़ेगा।

बिलकुल इसी तरह के घेरे तुम्हारे चारों ओर तुम्हारे समाज द्वारा तैयार किए जा रहे हैं। बेशक वे और अधिक परिष्कृत हैं। तुम्हारे धर्म कुछ भी नहीं महज एक घेरा है, लेकिन बहुत परिष्कृत। तुम्हारे चर्च, तुम्हारे मंदिर, तुम्हारे पवित्र पुस्तक, लेकिन एक सम्मोहक घेरे के अलावा कुछ भी नहीं है।

एक बात समझने की है कि व्यक्ति कई घेरों द्वारा घिरा हुआ है जो केवल तुम्हारे मन में हैं। उनका कोई वास्तविक अस्तित्व नहीं है, लेकिन वे लगभग असली के रूप में कार्य करते हैं।

यह केवल एक कंडीशनिंग है कि तुम अयोग्य हो। कोई भी अयोग्य नहीं है। अस्तित्व अयोग्य लोगों का उत्पादन नहीं करता है। अस्तित्व मूर्ख नहीं है। अगर अस्तित्व इतने सारे अयोग्य लोगों का उत्पादन करता है, तो पूरी जिम्मेवारी अस्तित्व की हो जाती है। तो यह निश्चित रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अस्तित्व बुद्धिमान नहीं है, कि इसके पीछे कोई बुद्धि नहीं है, कि यह एक मूर्ख, भौतिकवादी, आकस्मिक घटना है और इसमें कोई चेतना नहीं है। यह हमारी पूरी लड़ाई है, हमारा पूरा संघर्ष है, यह साबित करना कि अस्तित्व बुद्धिमान है, कि अस्तित्व बेहद सचेत है।

यह वही है जो अस्तित्व गौतम बुद्ध बनाता है, वह अयोग्य लोगों को नहीं बना सकता। तुम अयोग्य नहीं हो। तो कोई द्वार खोजने का सवाल ही नहीं है, केवल एक समझ चाहिए कि अयोग्यता एक झूठी धारणा है जो तुम पर उनके द्वारा आरोपित की गई है जो तुम्हें पूरे जीवन के लिए गुलाम बनाना चाहते हैं।

तुम इसे बस अभी छोड़ सकते हो। अस्तित्व तुम्हें वही सूरज देता है जो गौतम बुद्ध को, वही चाँद देता है जो जरथुस्त्र को, वही हवा जो महावीर को, वही बारिश जो जीसस को। कोई फर्क नहीं पड़ता, कोई भेद-भाव की जानकारी नहीं है। अस्तित्व के लिए, गौतम बुद्ध, जरथुस्त्र, लाओत्सु, बोधिधर्म, कबीर, नानक या तुम सब एक ही हैं। फर्क सिर्फ इतना है कि गौतम बुद्ध ने अयोग्य होने के विचार को स्वीकार नहीं किया है, वह विचार खारिज कर दिया।

तो अयोग्यता का विचार छोड़ दो, यह एक विचार है। और इसे छोड़ने के साथ, तुम आकाश के नीचे हो। द्वार का कोई सवाल नहीं है, सब कुछ खुला है, सभी दिशाएँ खुली हैं। कि तुम हो, यह पर्याप्त है साबित करने के लिए कि अस्तित्व को तुम्हारी जरूरत है, वह तुमसे प्यार करता है, तुम्हारा पोषण करता है, तुम्हारा सम्मान करता है।

अयोग्यता के विचार को सामाजिक परजीवी द्वारा बनाया है। इस विचार को गिरा दो। अस्तित्व के लिए आभारी होओ...क्योंकि यह केवल योग्य लोगों को बनाता है, वह कभी उसे नहीं बनाता जो बेकार है। वह केवल उन्हीं लोगों को बनाता है जिनकी जरूरत है।

मेरा जोर है कि हर संन्यासी अपना सम्मान करे और अस्तित्व के प्रति आभारी महसूस करे कि वह समय और स्थान के इस अवसर पर यहाँ है।

साभार : ओशो, बियांड एनलाइटनमेंट
सौजन्य : ओशो इंटरनेशनल फाउंडेशन

शिक्षा का अर्थ है उस पूर्णता की अभिव्यक्ति, जो सब मनुष्यों में पहले से ही विद्यमान है।
- **स्वामी विवेकानंद** (सिंगारावेलु मुदालियार को पत्र में, 3 मार्च 1894)

अनुभूति

गुलाब कोठारी

जीवन में एक है ज्ञान जो कर्म का मार्ग दर्शक होता है। दूसरा है अनुभव जो कि ज्ञान का व्यावहारिक प्रतिबिम्ब है। ज्ञान और कर्म की सम्मिलित छाप जो मन पर अंकित हो जाती है, यह छाप ही भविष्य में ज्ञान का स्थान ले लेती है। उम्र बढ़ने के साथ अनुभवों का संग्रह बढ़ जाता है। यूं भी कह सकते हैं कि बुढ़ापा अनुभवों का संग्रहालय है। इसीलिए 'ओल्ड इज गोल्ड' कहा जाता है। विशेषज्ञ का एक अर्थ ज्ञान के साथ अनुभव की बहुलता भी है। बिना अनुभव के ज्ञान का महत्व बड़ा नहीं माना जाता। कम से कम जीवन से जुड़े विषयों में तो ऎसा ही देखा जाता है।

भूत शब्द के भी अनेक अर्थ होते हैं। सृष्टि के स्थूल स्वरूप का निर्माण करने वाले तžव भूत कहलाते हैं। भूत का एक अर्थ बीता हुआ काल रूप भी है। पार्थिव जगत भी भूत कहलाता है। भटकने वाली आत्माओं में भूत-प्रेत का विवरण मिलता है। भूत के अभिभूत, अनुभूत, आविर्भूत आदि अनेक भेद किए जा सकते हैं। भूत शब्द प्राकट्य के साथ सम्बन्ध रखता है।

ज्ञान का प्राकट्य, पदार्थ का प्राकट्य। भूत तो कारण है। अक्षर सृष्टि अथवा प्राण समूह का अंग है। अत: केवल अनुभव में आ सकता है। अनुभूत होता है। सिद्धान्तों के व्यावहारिक स्वरूप से जो परिणाम आते हैं, वे अनुभूत होते हैं। स्मृति पटल पर अनुभव बनकर स्थाई रूप-ज्ञान रूप बनते हैं। इस देश में योग-प्रयोग-ध्यान की यही भूमिका है। मणि-मंत्र-औषध भी अनुभूति के आधार पर टिके हैं। प्रयोगों की सफलता ही व्यक्ति को अभिभूत करती है। जीवन की धरोहर होती है अनुभूति।

अनुभूति स्थूल से सूक्ष्म की ओर भी होती है। विभिन्न विषयों के ज्ञान और प्रयोग की भी होती है। जिस प्रयोग को करके देख लिया, वह होता है अनुभूत तथा उसका जो प्रभाव स्मृति में पहुंचा, वह है अनुभूति। अनुभूत का क्षेत्र केवल ज्ञान तक ही सीमित है। अनुभूति में संवेदनाएं भी जुड़ जाती हंै। इसमें बुद्धि के साथ मन का धरातल भी है। आत्म विश्वास अनुभूति से आता है। प्रेरणादायी है।

पुरूषार्थ-धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की अवधारणा में मूल तžव अनुभूति ही है। धर्म की अनुभूति से ही अर्थ, काम के प्रभावों को समझा जा सकता है। धर्म की परिभाषा और भूमिका तो अनुभूति में ही समझ सकते हैं। अर्थ परिणाम है, काम पीछे का कारण है। कामना अदृश्य होती है। अर्थ दृश्यमान जगत का अंग है। धर्म दोनों के मध्य सेतु है। सच तो यह है कि धर्म का कार्य अर्थ के माध्यम से कामना के पार जाना है। 'फ्लाई ओवर' का काम करता है। कामना स्वीकारना, नकारना अथवा

दबा देना, इन तीन रूपों में अपना अलग-अलग प्रभाव दिखाती है। धर्म युक्त और धर्म मुक्त के आधार पर छः प्रकार के हो जाते हैं। सत, रज, तम के प्रभाव में अठारह रूप हो गए।

शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा के परिपे्रक्ष्य में ही पुरूषार्थ को देखना चाहिए। पुरूष आत्मा को कहते हैं। अत: सृष्टि में एक ही पुरूष माना गया है। शेष सारा व्यापार प्रकृति का ही है। अर्थ शरीर के लिए, कामना मन में, धर्म बुद्धि/ ज्ञान रूप और मोक्ष को आत्म तžव माना है। मोक्ष का अर्थ है कामना के पार निकल जाना। मन में कोई कामना न रहे। सभी कामनाएं पूर्ण हो जाएं। ऎसे व्यक्ति आप्तकाम हो जाते हैं। यही जीवन की सबसे बड़ी अनुभूति भी है। प्रत्येक अनुभूति का आकलन करके, जीवन में उसकी भूमिका तय की जाती है। इस प्रकार एक-एक करके प्रत्येक अनुभूति से भावी कार्यो के प्रति मन को संकल्पित किया जाता है।
परिष्कार के अभ्यास की शुरूआत कामना को समझकर की जाती है।

कब मन में किस प्रकार की कामना पैदा होती है, कैसे विचार उठते हैं और क्यों। इस क्यों का उत्तर ढूंढ़ पाना ही लक्ष्य होता है। बहुत कठिन कार्य है। व्यक्ति की कई कमजोरियां भी बाधक बनती हैं। अज्ञान, राग-द्वेष, व्यसन-वासनाएं आदि के अपने-अपने प्रभाव होते हैं। भाव और अभाव के प्रभाव भी स्वभावत: बने रहते हैं। किसी व्यक्ति या वस्तु के रहने की मन पर भिन्न प्रक्रिया होती है और उसकी अनुपस्थिति की भिन्न। मन पर होने वाली सारी प्रक्रिया स्पन्दन रूप होती है। प्राणों को प्रेरित करके कार्य रूप में परिणत करती है। इसमें भाव और अभाव मूल भूमिका निभाते हैं।

अभाव से ही मन में इच्छा उठती है। यह भी कह सकते हैं कि इच्छा किसी अभाव की ही अनुभूति है। इस अभाव का जीवन पर क्या प्रभाव पड़ेगा। पूर्ति का प्रभाव, इच्छा नकार देने का क्या प्रभाव होगा और इच्छा को दबा देने का क्या परिणाम आएगा। इन प्रश्Aों के उत्तर के बिना कर्म अनुभूत नहीं होगा। परिणाम भी परिलक्षित नहीं होंगे। सामने खाने की थाली में अनेक व्यंजन रखे हैं। उनको बिना विचारे भी खाया जा सकता है और विचार करके भी खा सकते हैं। विचार करते ही स्पन्दन अपना कार्य शुरू कर देंगे।

खाना देखकर कैसा लगा, सूंघकर क्या भाव जागे, छूकर, चखकर अलग-अलग प्रतिक्रियाएं घटित होने लगेंगी। आप अपने मन की आवाज को भी सुन सकेंगे। मन कहेगा कि आज बैंगन नहीं खाने और आप बैंगन वाली कटोरी को स्वत: ही निकाल कर बाहर रख देंगे। देखा आपने, शरीर की भाषा में बुद्धि और शरीर दोनो के संदेश। अब खाना शुरू कीजिए। हुई कुछ अनुभूति? यदि आपके दिमाग में कई विषय चल रहे हैं, यदि आप स्मृति या भावी क्रियाकलापों में व्यस्त हैं, तब तो आप वर्तमान में जी ही नहीं रहे।

आपको कैसे अनुभूति होगी कि कौनसी चीजें (व्यंजन) आपकी मां-पत्नी-बहन ने बनाई। कौनसे व्यंजन रसोइए ने तैयार किए अथवा इनमें बाजार से लाया हुआ क्या-क्या है। इसके लिए आपका

वर्तमान में रहना (जीना) अनिवार्य है। वर्तमान में जीना ही पूजा है, साधना है और अनुभूति का जनक है। तब आप अभ्यास के सहारे सूक्ष्म शरीर की तरंगों के भी आगे कारण शरीर के स्पन्दनों का भी अनुभव कर सकेंगे। आपको समझ में आने लगेगा कि बनाने वाले ने खाने वाले को क्या संदेश दिया है।

तब खाना बनाने वाला और खाने वाला एक ही धरातल पर होते हैं। संस्कारों का, विशेषकर वातावरण जनित संस्कारों का, रूपान्तरण इसी तरह किया जाता है। यदि सलाह दी जाए तो कोई नहीं मानेगा। मंत्र भी अनुभूति कराने का सक्षम माध्यम है। बिना अनुभूति के रूपान्तरण संभव नहीं है। या तो व्यक्ति स्वयं अनुभूति करे अथवा परोक्ष रूप से परिवार का सदस्य/ गुरू अनुभूत करावे। आपकी अनुभूति ही आपकी तपस्या है। आप किसी को अनुभूति मार्ग से रूपान्तरित कर सकते हैं, तो आप गुरू/ सन्त हैं।



उदास रंग
और
चटख फूल का
सपना....
रिश्ता तेरा मेरा
बस
इतना ही इतना....................
बारिश में
छोड़ी थी
कागज़ की कश्तियाँ...
तेरे सफ़र की
दुआ के वास्ते
और
हवा में हिलते हाथ
लौटे ना घर अपने
बस
रिश्ता तेरा मेरा
इतना ही इतना...
--इंदु लेखी

अंधविश्वास ले रहा है लक्ष्मी के वाहन की जान

सुप्रिया स्वर्ण



जादू-टोने के लिए अंगों की उपयोगिता (अंधविश्वास) का खामियाजा पक्षी उल्लू को चुकाना पड़ रहा है। इसकी संख्या में लगातार घट रही है। यह खुलासा दिल्ली में वाइल्ड लाइफ ट्रेड पर नजर रखने वाली संस्था 'ट्रेफिक इंडिया' की एक रिपोर्ट से हुआ है।रिपोर्ट के मुताबिक आदिवासी समुदाय के लोग खाने और जादू-टोने के लिए उल्लू का शिकार करते हैं। मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र और आंध्रप्रदेश के निवासी पारदी आदिवासी इसे पकड़कर देशभर में बेचने का काम कर रहे हैं।

उत्तर-पश्चिमी मध्यप्रेदश के नीमच जिले में रह रहे 100 पारदी परिवार उल्लुओं के अंगों से बनी कई प्रकार की वस्तुएं देशभर में बेच रहे हैं। इन्हीं सब वजहों से उल्लुओं की संख्या देशभर में तेजी से घट रही है। भारतीय उपमहाद्वीप में उल्लुओं की 32 प्रजातियां पाई जाती हैं। इनमें से 30 प्रजातियां भारत में मिलती हैं। लेकिन शिकार के कारण इन प्रजातियों में से ज्यादातर संकटग्रस्त और लुप्तप्राय प्रजातियों में शामिल हो चुकी हैं।

अवैध शिकार में लिप्त समूह

बहेलिया, मिरशिकर, फासिया, भटियारा, पठामी, हक्कीपुक्की, कुरुविकारा, कलंदर, वागरी, पारदी, दमोरा, भील, मुंडा, लोडी, बावरिया, लंबादास, नाथ सपेरा, गुलगुलवास, करबी, गारो। राजस्थान में पकड़े गए थे: नीमच से 15 पारदी कोटा में लगने वाले दशहरे मेले में गए थे। उनके पास 20 मृत उल्लू और 35 उल्लुओं के अंग मिले जिन्हें वे कोटा बेचने ले गए थे। बाद में इस मेले में राजस्थान पुलिस ने दबिश दी थी। इस दौरान कुछ पारदी पकड़े भी गए थे।

ये हैं सबसे बड़े बाजार:

1. उत्तर प्रदेश/मध्यप्रदेश 2. पश्चिम बंगाल/आंध्रप्रदेश 3. दिल्ली 4. गुजरात 5. राजस्थान/बिहार।

उल्लुओं की ये पांच प्रजातियां हैं निशाने पर:

1. रॉक ईगल आउल 2. ब्राउन फिश आउल 3. डस्की ईगल आउल 4. कॉलर्ड स्कूप्स आउल 5. मॉटल्ड वुड आउल

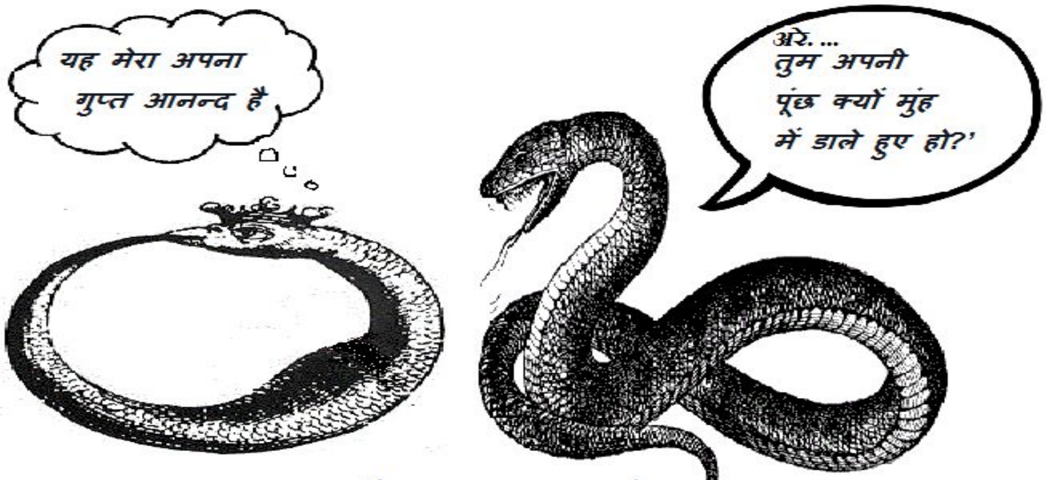
यहां से सबसे अधिक पकड़े जाते हैं उल्लू- 1. उत्तरप्रदेश 2. मध्यप्रदेश/आंध्रप्रदेश 3. छत्तीसगढ़/झारखंड 4. राजस्थान 5. गुजरात/उत्तराखंड

नव भारत टाइम्स से साभार

'तुम्ही से ' रिपो्रताज

कहानी

इस बार कहानी स्तम्भ में मनुष्य के ज्ञानोपर्जन पर एक प्रहसन (satire) प्रस्तुत है



अद्भुत घुमक्कड़ और ज्ञानवान पूंछ-कुतरा



डा. स्वर्ण जे. ओमकार

अद्भुत घुमक्कड अपने रास्ते पर था. वह वन प्रदेश में घूम रहा था. क्या थी उस की खोज, भोजन था या कुछ और, कोई क्या कह सकता है? वह जब भूमि और कभी सूखे पत्तों पर सरकता था तो उस की आहट से डर कर परिन्दे शोर मचा देते थे. कभी पत्तों के वीच से निकलता था तो उस की चमकीली पीठ खुली रौष्नी में और दीप्तिमान हो उठती थी. तभी उसे एक शिकार दिखा. वह एक बड़ा मेंडक था. उस ने फुंकारा छोड़ा. मेंडक वहीं का वहीं रूक गया. उस ने अपने फण को वशिष्ट रीति से मेंडक के सर पर घुमाया और अगले ही पल वह उस के भेदक दांतों में फंस चुका था. अगले दो चार पलों में वह उस के पेट में था.

वह वन में ऐसे ही ठाठ से घूमता रहा. तभी वह एक गड्ढे के पास से गुजरा तो उसे फुंकारने की आवाज़ सुनाई दी. आवाज़ गड्ढे के भीतर से आ रही थी. कुतूहल-वश वह गड्ढे किनारे के पास गया और उस ने भीतर झांका. अगले ही पल वह अपनी आखें झपकने लगा.

उसे अपनी आंखों पर यकीन न आया. यह देख कर नहीं कि भीतर उस जैसा एक और प्राणि मौजूद था और वह भी उसी की तरह फुंकारे लगा रहा था. बल्कि यह देख कर कि वह प्राणि अपनी पूंछ को अपने मुंह में डाले हुए था और उसे जोर जोर से चीथ रहा था. वह पूछे बिना न

रह सका,
'अरे यह क्या, तुम क्या कर रहे हो वहां?'
'ओ तुम! लग रहा है कि जंगल से आये हो. तभी तो शिष्टाचार की कमी है. तुम बतायो तुम यहां क्या कर रहे हो? भागो यहां से. मेरे गड्ढे पर शायद तुम्हारी नज़र है.'
'मुझे नहीं चाहिये तुम्हारा गड्ढा. मैं तो यह जानने के लिये बेताब हूं कि तुम गड्ढे में क्या कर रहे हो. बाहर क्यों नहीं घूम रहे, भोजन के लिये?
मैं क्यों करूं भोजन की तालाश. यहां मेरे पास प्रयाप्त भोजन है. काफी मेंडक हैं और सब पिंजरे में. मुझे मेंडक पालने का ढंग आ गया है. यद्यपि मैं उन्हें यहां नहीं पालता. मेरे जैसे बहुत सारे हैं जो यह काम करते हैं. वे मेरे भोजन की आपूर्ति करते हैं.'
'अद्भुत! और यह सब पृथ्वि पर हो रहा है! मुझे तो अपनी आंखों पर यकीन नहीं हो रहा. पर तुम अपनी पूंछ क्यों मुंह में डाले हुए हो?'
'यह मेरा अपना गुप्त आनन्द है. मैं किसी बाहर के प्राणि को अपना भेद क्यों बताउं?
'शायद इसी लिये तुम्हें मुझे बताना चाहिये. मैं बाहर का हूं और तुम्हारे अपने भाईचारे का नहीं. तुम बेझिजक मुझसे बात कर सकते हो. मुझे जानने की तीव्र इच्छा भी तो है, मित्र!'
कुछ देर और इसरार करने के बाद पूंछ कुतरा चर्चा के लिये तैयार हो गया.
'तुम ठीक कहते हो! मैंने भी बड़े समय से अपना मन नहीं खोला. तुम शायद सही व्यक्ति हो जिससे मैं अपने दिल की बात कर सकता हूं.'
'हां, हां मित्र! व्यर्थ शिष्टाचार से स्वयं को अलग करो. मुझे बताओ तुम अपनी पूंछ क्यों चीथ रहे हो?'
'खुजली! मुझे बस खुजली होती है, मेरे भाई! और मुझे इसे खुजाने में आनन्द मिलता है.'
'देखो मित्र, मज़ाक छोड़ो. मेरी उत्सुकता न बढ़ाओ.'
'ठीक ही तो कह रहा हूं. और मुझे हमेशा इस क्रिया से आनन्द नहीं मिलता",
" कभी कभी पीड़ा भी मिलती है', गहरी सांस ले कर पूंछ कुतरा बोला.
'पीड़ा! वह भला किस लिये?' घुम्मक्कड़ के लिये यह अब नई उत्सुकता का विष्य था.
'जब मैं अपने दांत गहरे गडा देता हूं.' दोनों हंस पड़े.
'देखो मित्र, फिर मज़ाक कर रहे हो. मुझे बतायो तुम ऐसी क्रिया में संलिप्त ही क्यूं होते हो जो बाद में पीड़ा का कारण बनती है.'
'पुंछ चीथना असल में हमारी पुशतैनी परंपरा है. यह मुझे सोच-विचार में सहायता करती है. मैं चिंतक हूं और चिंतन मनन करता हूं.' पूंछ कुतरा अब स्पष्टवादिता पर उतर आया था. उसे लगा कि अब वह बात को ज्यादा नहीं खींच पायेगा.
'लोग मेरे चीथने से मेरी सोच प्रक्रिया का अंदाज़ा लगा सकते हैं. आनन्दायक चिंतन में मैं अपनी पूंछ को धीरे धीरे काटता हूं. जब गहरा चिंतन करता हूं या जब मैं किसी समस्या के समाधान पर काम कर रहा होता हूं तब मेरे विचार मष्तिष्क में उत्पात मचा देते हैं. तब मैं अपनी पूंछ को जोर जोर से काटता हूं. मुझे पता है कि यह अच्छा नहीं लगता पर मैं लाचार हूं मेरे भाई!'
'पर सोच विचार तो लगपग प्रत्येक प्राणि करता है. मैं भी तो सोच विचार करता हूं पर मैं अपनी

पूंछ नहीं काटता. तुम ऐसा कौन सा चिंतन करते हो?'

'अपने चिंतन से मैं विचार पैदा करता हूं. ये विचार मुझे ज्ञान देते हैं. ज्ञान मुझे बढ़ने में, विकास करने में, उन्नति करने में सहायता करता है, हां मेरी समझ को भी बढ़ाता है. कई बार मैं ज्यादा काम कर लूं तो ढेरों विचार एकत्रित कर लेता हूं.'

'फिर तुम उनका क्या करते हो?'

'मैं उन्हें पुस्तकों में प्रकाशित करता हूं. यह मेरी बेहतरीन मनोचित क्रीड़ा है और मेरी उपजीविका भी.'

'वाह! मुझे प्रसन्नता हुई यह जानकारी प्राप्त करके. तुम्हारे जैसे और भी होंगे जो यही काम करते हैं.'

'हां, बहुत सारे. कोई समय था जब एक इंट उखाड़ो तो नीचे दो मिलते थे अब तो इंट उखाड़ने की ज़रूरत नहीं. इंट पर बैठे दो मिल जायेंगे. ये सभी प्राणि लेख़क कहलाते हैं, लेख़क, फिलास्फर, चिंतक, अध्यात्मवेता....'

'तो तुम लोग अपनी पहचान बनाये रखने के लिये क्या करते हो?'

'जटिलता..! हम अपनी रचनायों को ज्यादा से ज्यादा जटिल बनाते हैं. जो जितना ज्यादा जटिल लिखता हे उतना ही वह बड़ा लेखक है. कई बार तो हमारे विचार हमें स्वयं समझ में नहीं आते. ये गणित शाष्त्र की पहेली जैसे होते हैं.'

'तो तुम उनका अर्थ कैसे निकालते हो?'

'अर्थ की किसे परवाह है. हां हम में ही एक और श्रेणी के लेखक है जिन्हें हम आलोचक कहते हैं. वे शेष लेखको के बारे में बड़ी बड़ी पुस्तकें लिखते हैं, ज्ञान गोष्ठियां एवं चर्चायें करते हैं. वे संरचना को समझने के लिये विरचना का सहारा लेते हैं....'

'संरचना हो या विरचना, है तो दोनो विचार ही.... विचार ज़िंदगी तो नहीं. ज़िंदगी तो विचार के बाहर है या विचार के बाद है जैसा तुम कहते हो. और यदि विरचना उससे भी जटिल हुई तो...' घुमक्कड़ अपनी ठेठ जांगली शुष्कता से बोला.

'ही.. ही.. ही..,' पूंछ कुतरा हंसा,'यही तो हमारा आहलाद है प्यारे, हमारा परमप्रिय सुख है, हमारा दर्शन है! इस परमप्रिय कार्य में संलगन एक नहीं लाखों हैं. हमारा अलग एक शैक्षणिक समुदाय है. यही हमारी उपजीविका है. हां हम सब लोग अपनी पूंछ चीथते हैं. पूंछ चीथना हमारी प्रतिष्ठा का प्रतीक है.'

'बढ़िया! तो तुम एक ज्ञानवान प्राणि हो. चलो तुम्हारे ज्ञान की बातें करते हैं.'

'शौक से!' पूंछ कुतरा निमरता से बोला.

'तुम्हारा बेहतरीन आनंदायक चितंन क्या है?'

'मेरे बेहतरीन चीथने योग्य... मेरा अभिप्राय है...विचारने योग्य विष्य हैं....समस्त जीवन का दर्शन.. समस्यायें जैसे कि दुख व सुख, भला बुरा है क्या, शाष्वत चिरकालीन सौंदर्य, जन्म मृत्यु के पार क्या, मूरत अमूरत परमात्मा; इस के इलावा समस्याऐं जैसे उग्रवाद, क्षेत्रवाद, आतंक...'

'ठीक है..ठीक है.. तो क्या है तुम्हारा निष्कर्ष!'

'किस के बारे में?'

'इन में से किसी के बारे...जैसे.... भला बुरा है क्या?'

'यह मैं कुछेक शब्दों में नहीं बता सकता. तुमने जानना है तो पुस्तकालय चले जाओ. यहां से पांच गड्ढे छोड़ कर छठा. यहां तक मेरा अपना प्रश्न है मैं इस के बारे निष्चित रूप से कुछ कह नहीं सकता.'

'तुम इस महान् कार्य में कब से कार्यरत हो?'

'कई पीढ़ियों से.'

'कई पीढ़ियों से? और अभी भी निष्चित नहीं! अभी भी अंधेरे में ही हाथ पांव चला रहे हो!'

'पर हमने बड़े आंकड़े इकट्ठे कर रखे हैं. बड़ी विचाराधीन सामग्री जमा की है! हम इन्हें जल्द संकलित कर लेंगे. पर समस्या यह है कि आंकड़े प्रत्येक वर्ष बढ़ जाते हैं. असल में हमारे यहां अध्याप्क व शोधकर्ता का प्रचलन है. अब शोध बढ़ रही है तो शोधकर्ता बढ़ेगे. शोधकर्ता बढ़ेंगे तो अध्याप्क भी बढ़ेंगे. सो हमनें इस के लिये बड़े बड़े विष्वविद्यालय बना रखे हैं. यह एक बड़ा व्यवसाय है, मेरे भाई! सभी अध्याप्क व शोधकर्ता मिल कर बड़े बड़े शोधपत्र लिखते हैं, पुस्तकें भी! फिर वे स्वयं के बीच बड़े बड़े पद एवं उपाधियां बांटते हैं और ज्ञान की महानिधि को परितृप्त करते हैं. अब हमारी शोध से पुस्तकालय इतने भर चुके हैं कि हम ने ज्ञान को संग्रह करने की एक नई विधि खोज निकाली है... वह है कंप्यूटर और ......'

'बस मैं समझ गया! तुम वे आंकड़े अपनी कबरों में ही संकलित करोगे. पर मुझे यह बताओ कि तुम ऐसा ज्ञान एक्त्र ही क्यों करते हो जिसके संशोधन की, पुनःअवलोकन की जरूरत पड़ती है.'

'लो! इसी से तो ज्ञान बढ़ता है.' पूंछ कुतरा बड़े आत्म विशवास से बोला.

'पर पर ज्ञान का कोई अंत तो होगा! कोई अंतिम बात! अंतिम अंत्रदृष्टि! और उस के बाद जीना शुरू करो! एक पूरे युग में तुम्हारे कितने ज्ञानी और मसीहा मिलते हैं तुम्हे उन से तुष्टि नहीं मिलती. तुम्हें तो हर वर्ष में हर नये दिन में नया मसीहा चाहिये जो तुम्हारी हर क्रिया प्रतिक्रिया का मार्गदर्शन करे!' अद्भुत घुमक्कड हंसते हुए बोला.

'हां, हां..अंत्रदृष्टि! हम में भी बहुत लोग अंत्रदृष्टि से परिपूर्ण लिखते हैं पर वह सब ज्ञान की बहुतात में खो जाता है.'

'तुम सत्य की खोज तो कर लेते हो पर सत्य का मुल्य नहीं जानते! हां बताओ, तुम्हें नहीं लगता कि ऐसे ज्ञान की पगडंडी का अनुकरण करना, जिसका जीवन में ज्यादा उपयोग नहीं बेशक समय एवं उर्जा की बर्बादी है.'

'लगता तो है कई बार... हां.... पर ऐसा है कि....हम ज्ञानवान लोग अपनी योग्यतायों के बारे में बहुत हठी होते हैं. हम दूसरे को सुनते नहीं केवल अपने अहम् को बचाये रख कर प्रोत्साहित करते हैं बस. सुनना हमारी आदत नहीं. जब सभी कह रहे हों और सुनता कोई न हो तो केवल शोर इकट्ठा होता है, समझ से नदारद केवल भारी भरकम उत्पाद पैदा होता है. कोई था हम ही से. हमही का भाई व् बंधू जिसने कहा था कि हमें अपने पुस्तकालय प्रत्येक दस वर्ष के बाद जला देने चाहियें और नये सिरे से खोज करनी चाहिये...'

'यह भी तुम्हारी समस्या का समाधान नहीं. तुम्हारे पुस्तकालय फिर इससे भी बड़े होंगे.'

'तो हम क्या करें?'

'सत्य तो प्रत्यक्ष होता है, साफ़ एवं स्पष्ट. वह हमारे सहज ज्ञान में, हमारी व्यवहारिक बुद्धि में लिपट कर हमारे पास आता है.बौद्धिक जटिलता से तुम अभिव्यक्ति का सौंदर्य नष्ट कर देते हो.'
'पर हम अपने समाज की समस्यायों का क्या करें. समुदाय का क्या करें जो उनके समाधान के लिये हमारी ओर टकटकी लगाये बैठा है.'
'उसका कारण भी तुम्हारी बुद्धि ही है. तुम यह मान कर बैठे हो कि तुम समुदाय की प्रत्येक समस्या, प्राकृति की हर आपदा का समाधान अपनी बौद्धिक्ता द्वारा कर सकते हो. अगर समाधन नही मिल रहा तो यह तुम्हारी बुद्धि की कमी है न कि यह जीवन की अनिष्चतता कोई पहलु है. तुम सोचते हो कि बौद्धिक्ता द्वारा तुम समस्या के मूल तक पहुंच जाओगे. जबकि तुम समस्या के साथ जुड़ीं दस और समस्यायों को निकाल लेते हो. तुम्हारी बौद्धिक्ता तुम्हारी समस्यायों का हल नहीं कर सकती.' अद्भुत घुमक्कड़ ने एक टुक जवाब दिया.
'पर एक बड़ी समस्या के छोटे टुकड़ों को नज़र अंदाज़ करना बाद में एक बड़ी समस्या को जन्म नहीं देगा क्या.'
'मैं इससे इनकार नहीं करता. मैं तो कहता हूं कि समस्या वहां नहीं यहां तुम उसे देख रहे हो. समस्या कहीं और है. वह है तुम्हारा मन, तुम्हारी इच्छा!'
'एक ईमानदार इव्छा जो समस्या का समाधान खोजने के लिये तत्पर है कैसे समस्या का कारण हो सकती है?'
'वह इस लिये कि ईमानदार इव्छा कहती है कि वह स्वयं नहीं बल्कि दूसरे लोग समाज की अव्यवस्था के कारण हैं, सुधरने की भी ज़रूरत उसे नहीं दूसरों को है. वह मान चुकी है कि बौद्धिक्ता के बल पर वह अपनी कमियों को या तो जीत सकती है या छुपा सकती है. तुम आंकड़े समुदाय को बदलने के लिये इक्ट्ठे करते हो स्वयं को नहीं.'
'मैं समझा नहीं...'
'यह मन है मेरे भाई जो समस्या का मूल है. अपने तमाम छल कपट सहित, अपनी दबी प्रवृतियों का अपनी गुप्त इच्छायों का दास!'
'मतलब..?'
'मतलब.. बिना मेहनत किये दूसरों की मेहनत के बल वूते पर अपने लिये विलासता के उपकर्ण हासिल करना इसे ही तुम बुद्धिमता, बुद्धि की कमाई कहते हो.'
पूंछ कुतरा चीख़ पड़ा,
'यह व्यवसायक बौद्धिक्ता एक दिन में तो नहीं मिल जाती! इस के लिये वर्षों के वर्ष रातों को जगना पड़ता है. अगर तुम सफ़ल होते हो और दुनियां तुम्हें उत्कृष्ट मानती है तो इस में बुरा क्या है? और मन ने भी वे दबी प्रवृतियां और गुप्त इच्छाएं एक दिन में नही पैदा कर लीं. वे उस के साथ पीड़ियों से हैं. और तुम मुझे बताओ इच्छाओं को मारना अच्छा है क्या?'
'जीवन के उल्लास को मनाना बुरा नहीं और न ही इच्छाओं की पूर्ति करना! मैं तो उन के फैलाव के विरूद्ध हूं. मैं तो उन के छल द्वारा और लुक छिप कर की पूर्ति के विरूद्ध हूं. मैं तो बेइन्तहा पूंजि के विरूद्ध हूं जो तुम भविष्य के लिए जमा करते हो. देखो मैं अपने पास कुछ नहीं रखता फिर भी मैं प्रसन्न हूं.'

'हमारा सभ्य समाज इन आदिम तौर-तरीक़ों से नहीं चलेगा. हमारे लोग भविष्य के लिए जमा नहीं करेंगे तो एक दूसरे को लूट खायेंगे. हम दो एक नही बहुत सारे हैं.'
'...........', अद्भुत घुमक्कड कुछ समय के लिए रूक गया. उसे लगा शायद उसे मुर्ख बनाया जा रहा है. वह आगे कुछ कह न सका.
'ठीक है! शायद तुम थक गए हो. ज्ञान चर्चा को यहीं छोड़ कर चलो पेट पूजा करते हैं. मेंढक तैयार है.'
दोनों ने मेंढक खाये. घुमक्कड को पिजरे में बंद मेंढक खाना अच्छा नहीं लगा. पहली बार उस ने मेंढक की आंखों में डर को देखा. उसे अब समझ में आया कि क्यू ये लोग दुख व सुख, नैतिक्ता अनैतिक्ता, भला या बुरा, पाप व पुण्य के जाल में उलझे रहते हैं.
फिर कई दिन दोनों ने लगपग जीवन के हर पहलु पर चर्चा की. एक समय ऐसा आया कि अद्भुत घुमक्कड को लगा कि वह चर्चा बीच में छोड़ कर चल पड़े और पूंछ कुतरे को उसके हाल पर छोड़ दे. उसका विचारवान मित्र तर्क के मामले में कहीं भी कम नहीं था.
फिर एक दिन आया जब घुमक्कड जाने को तैयार था. उसे विशवास हो गया था कि उसका ज्ञानवान मित्र केवल सरलीकरण एवं सपष्टता के लिए अपनी बौद्धिक्ता का त्याग नहीं करेगा. गड्ढे में धंसे उस पूंछ टुकने वाले महान् षब्द शिल्पी को वहीं छोड़ कर चलने के लिए तैयार होते हुए घुमक्कड ने कहा-
'असल में बुद्धि का फैलाव नहीं बुद्धि की सूक्ष्मता तुम्हारी समस्या का हल है. इससे भी ज्यादा तुम्हे कहने से अधिक समझना, समझने से अधिक महसूस करना, महसूस करने से भी अधिक चेतन होना चाहिए.
'और इससे भी ज्यादा?' पूंछ कुतरे ने फिर दिलचस्पि.
'तुम्हें अपने चेतन होने के प्रति भी चेतन होना चाहिए.'
'अरे वाह! तुम तो ऐसी बातें कर रहे हो जो हम ने कई बार अपनी लेखनी में दोहराई हैं.'
'तुम्हारे बृहदाकार साहित्य में सत्य बुद्धि के पास तो होता है पर चेतना से, ज़िन्दगी से दूर रहता है. तुम्हें विचार एवं ज्ञान के एक नये रास्ते की खोज करनी है.'
'वह क्या है?'
'वह है विचार शून्य चेतनता, धारणा शून्य मन, विचार शून्य ज्ञान!'
'फिर विरोधाभासी बातें करने लगे हो. बिना विचार के ज्ञान कैसे हो सकता है?'
'कोई बड़ा विरोधाभास नहीं है इस में. तुम कोशिश से नहीं बल्कि सहज भाव से इस रास्ते पर चल सकते हो. यह ज्ञान शून्य ज्ञान, अपनी खामोशी में से बोलने की प्रक्रिया है....'
'.......'
'पूर्व काल में विवेक व बोध के महा प्रेमी, महा मुनि ऐसा ही करते रहे हैं. वे प्रथम श्रैणि के ज्ञानवान थे. वे ऐसे ज्ञानवान थे जिनके बोध का उद्‌गमस्थल बाहरी संसार नहीं उनका अपना अंतस् था. वे बाह्यमुखी नहीं अंत्रमुखी ज्ञानवेता थे. वे अंतरमन की गहन् खामोशी से बोलते थे. पर उनकी एक समस्या थी जो आज हम सब की है. भाषा एवं सत्यता की अवधारणा इसी संसार में बनीं और संसार के लोगों की समझ के अनुरूप ही कही या लिखी जाने लगी. उसी धारणा के

अनुरूप सत्य को अभिव्यक्त करना उन की बेबसी थी. वे लोगों की भाषा के अनुरूप बात करते थे. लोगों की भाषा से ही उन्होंने प्रकृति के महान रहस्यों को विचार बध किया उन्ही लोगों ने प्रकृति के महानतम सत्य का नाम परमात्मा यानि परम आत्मा रखा यानि 'परम हम.' वे कहना चाहते थे कि हमी वह सत्य हैं. दूसरी श्रैणि के विचारवान सत्य के खोजी नहीं केवल सत्यता के अनुगामी थे. वे पहले से बिछी बिसात पर ही खेलते रहे. उन्होंने प्रथम श्रैणि के विचारवानों द्वारा व्यक्त अवधारणा के केवल संसारी अर्थो को ग्रहण किया और बुद्धि के इसी विस्तार को बढ़ावा दिया. इससे अगली श्रैणि के विचारवानों ने तो इन अर्थों को भी छोड़ दिया और केवल बाह्य् शब्दों को ही उत्साह से अपनाया और इन्हें सिद्धांतक रूप दे दिया. तब खामोशी की तरलता समाप्त हो गई और बुद्धि अवधारणायों के ठोसाकार में जकड़ गई. आज भी कभी कभी कोई मौलिक विचारवान पैदा होता है जो तमाम पुरानी अवधारणा को तोड़ देता है पर दुर्भाग्यवष नई धारणा को पनपने से नहीं रोक पाता. क्या संक्षेप में यही तुम्हारे ज्ञान की कहानी है जिसकी हमने अब तक बात की है.'

'पर हम क्या करें कि 'ज्ञान की श्रेष्ठता' के बहकावे में न आयें और ज्ञान शून्य अंतस् की खामोषी की तरलता के साथ कैसे एकाकार हों'

'तुम अपने अंदर विचार का विचार न बनने दें. तुम्हें कोई एक शब्द दे देता है- जैसे 'चेतना' और तुम एक पल में उस के इरद गिरद हजारों तानों बानों के साथ उन तमाम अवधारणों को इक्ट्ठा कर लेते हो जो आज तक तुम्हारी जानकारी में हैं. चेतना का यह ज्ञान ही तुम्हें वासत्विक चेतना को समझने नहीं देता. तुम शब्द को, वाक्यांश को, किसी महान् सत्य को बिना विचार के अपने अंदर घुस जाने दो. उसे अपना काम करने दो. सत्य जानने से पहले सत्य जानने वाले को जानों जो तुम स्वयं हो.'

'यह सब मुझे मेरी समस्यायों को समझने एवं हल करने में कैसे साहायता करेगा.'

'देखो तुम फिर विचार के विचार के पीछे भाग रहे हो. तुम्हे वस्तुस्थिति बदलने से पहले वस्तुस्थिति के बदलने का ज्ञान प्राप्त करने की जल्दी है ताकि तुम गलत सही का निर्णय कर सको.'

'शायद तुम ठीक कहते हो. कोई और अंतिम बात?'

'एक ही विचार को दो बार न सोचो न लिखो. विचारों के गोलाकार वृत से बुद्धि को आज़ाद करो और अपने मुंह को पूंछ से!' अद्भुत घुमक्कड हंसा और हंसता हुआ आगे बढ़ गया और फिर पीछे मुड़ कर बोला,

'गड्ढे बाहर निकलो और अपने अंदर के घुमक्कड को मरने न दो!'

कह कर अद्भुत घुमक्कड जंगल में गायब हो गया.

लेखक के नोटसः

अद्भुत घुमक्कड- चेतना यानि ह्यूमन कांसयसनैस जो ज्ञात यानि नालेज का पीछा किये बगैर नई संभावनायों की ओर बढ़ती रहती है

पूंछ कुतरा- मन यानि ह्यूमन माइंड जो ज्ञात यानि नालेज को अपनी अमुल्य संपति और बुद्धि को अपना हथियार मानता है. अगर मन ने भूतकाल में कहीं चोट खाई है तो वह हमें अपने ज्ञान के आधार पर दोबारा वहां जाने को रोकेगा जबकि चेतना के लिये यह कोई अनवार्य नहीं. वुद्धि चेतना के लिये भी उसी तरह काम करती है पर वह उस के पांवों में बेड़ियां नहीं डालती.

पुंछ मुंह में डालने का अर्थ - वृताकार सोच (circular thinking) में ज्ञान वान लोगों की रूचि है जिस के तहत वे पूर्व-परिभाषित ज्ञान को बार बार परिभाषित करते है.

अभी ह्यूमन कांसयसनैस मन व बुद्धि द्वारा जकड़ी हुई है अगर ह्यूमन कांसयसनैस ने अपने अगले पड़ाव ‘एज आॅफ कांसयसनैस’ की ओर अग्रसर होना है तो हमें ‘ज्ञान की श्रेष्ठता’ यानि प्राइमेसी आॅफ नालेज को छोड़ना होगा (Translated from English by author)

...मेरी सुबह
नीलू हर्ष की कविता



मुझ से आनंद ले बाँटोगी नहीं
मेरी सुबह पूछती है मुझ से ...
और मैं
उसका बाहें खोल स्वागत करती
हूँ
मुझ में मुर्शिद मौला ढूंढती हो
पा लोगी ..??
मेरी सुबह ने
पूछा मुझसे
और मैं
आँखें बंद कर मौन हूँ
मेरा चेहरा हाथों में भर
माथा चूम
ओस -सा
मुक्द्स एहसास दे मुझे बोली
मुझ से इतनी मोहब्बत क्यों ..??
और मैं
[illegible] बंद पलकों से
उसका एहसास लिए जा रही
कभी भरी -भरी सी

बुद्धिजीवी और बंदर

गुरमीत बेदी



बुद्धिजीवियों की बैठक चल रही थी

और उस बैठक में एक से बढ़कर एक बुद्धिजीवी बैठे थे। कोई अव्वल दर्ज़े का बुद्धिजीवी तो कोई परले दर्ज़े का बुद्धिजीवी । अपने चेहरे मोहरे, भाव-भंगिमाओं और बैठने के स्टाईल से सभी वाकई बुद्धिजीवी लग रहे थे। कुछ हालाँकि पैग-शैग लगाकर आए थे लेकिन उनके बुद्धिजीवी होने पर कतई शक़ नहीं था। गठबंधन सरकार की तरह वे अपना मानसिक व शारीरिक संतुलन बनाए हुए थे। कहीं से भी गिर नहीं रहे थे। कुछ पान चबा रहे थे तो कुछ सिगार पीते हुए लगातार धुँए के छल्ले उड़ा रहे थे। इससे साबित हो रहा था कि वे वाकई बुद्धिजीवी हैं। इस बैठक में कोई यूं ही मुँह उठाकर नहीं चले आए हैं।

खैर ! बुद्धिजीवियों के सामने समस्याओं की फ़ेहरिस्त रखी गई जिसे उन्हें सुलझाना था। पहली समस्या यह थी कि जंगलों से निकलकर जो बंदर शहरों में आ गए हैं, उनका क्या किया जाए ? एक बुद्धिजीवी की राय थी कि बंदरों को समझा बुझा कर वापिस जंगलों में भेज दिया जाए। दूसरे बुद्धिजीवी का कहना था कि बंदरों को यह बताया जाए कि शहरों में रहना उनके लिए ख़तरनाक साबित हो सकता है। शहर बीमारियों का घर बनते जा रहे हैं। प्रदूषण बढ़ रहा है। संयुक्त परिवार टूटने से बच्चे घरों में अकेले हो रहे हैं। लोग फ़ास्ट फूड खाकर डायबिटिज और मोटापे का शिकार हो रहे हैं। इससे बंदरों की भावी पीढ़ियों पर भी बुरा असर पड़ सकता है। जब बंदरों को शहरीकरण के ख़तरे बताये जायेंगे तो निश्चित रूप से वे अपनी औलाद की सुरक्षा और उसे बिगाडने से बचाने के लिए वापिस जंगलों में चले जायेंगे। एक बुद्धिजीवी की राय थी कि जंगलों में सरकार की ओर से फल और खाद्य पदार्थ नियमित रूप से भिजवाये जायें ताकि बंदरों का दाल-फुल्क़ा चलता रहे और उन्हें शहर आने की मजबूरी न रहे। लेकिन इस विचार पर कुछ

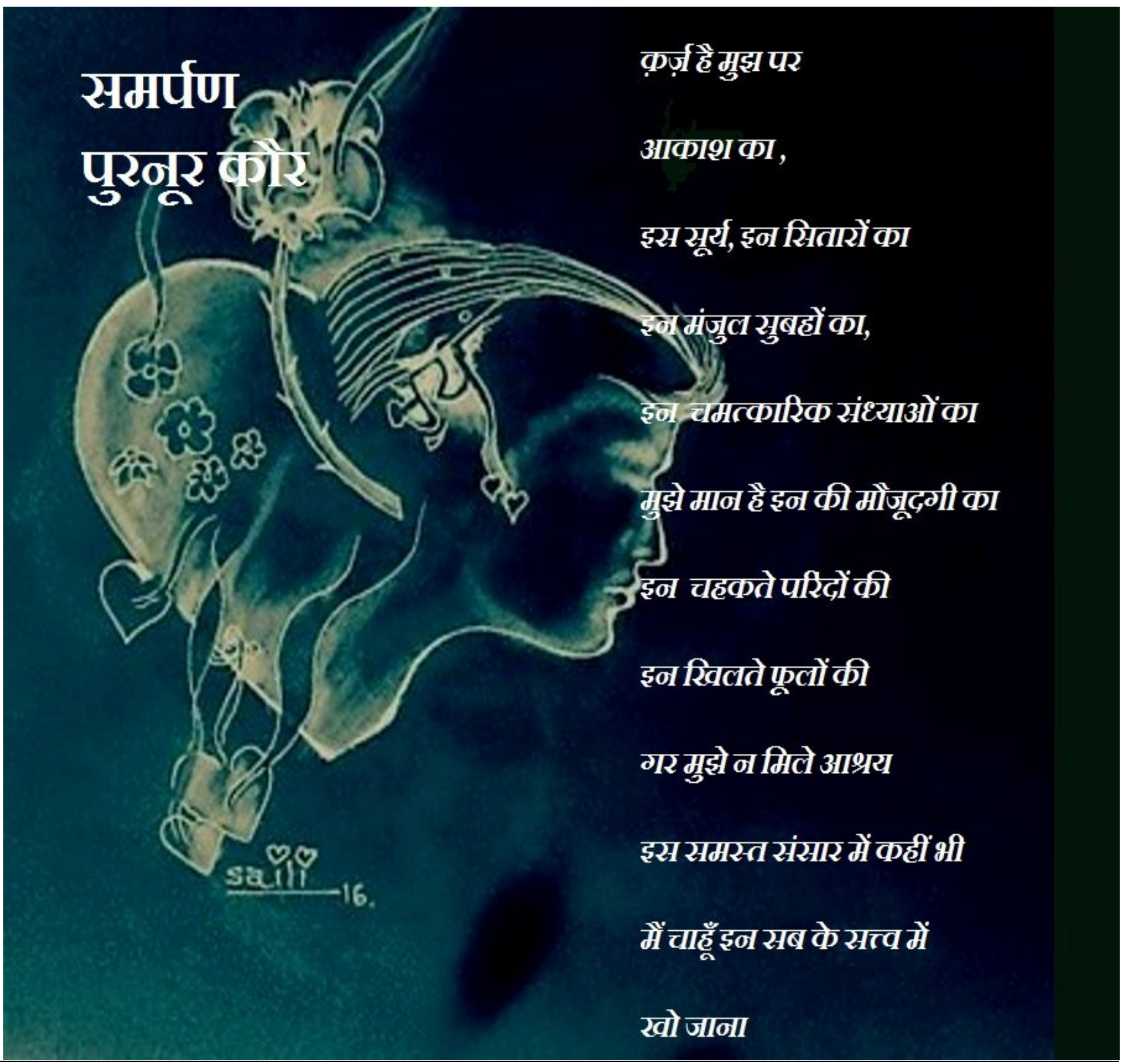
बुद्धिजीवी सहमत नहीं थे। उनका कहना था कि सरकार ग़रीब आदमी को तो सस्ती दरों पर ये चीज़ें मुहैया करवा नहीं पा रही है, बंदरों को मुफ़्त में कैसे मुहैया करवायेगी? एक बुद्धिजीवी की यह चिन्ता भी थी कि जिस तरह सरकारी सप्लाई में बड़े लेवल पर गोलमाल व अनियमितताएँ होती हैं, वैसे ही बंदरों को फल और खाद्य पदार्थों की सप्लाई में भी यही कुछ हो सकता है। भ्रष्ट लोग सरकारी तंत्र में कहाँ-कहाँ नहीं हैं ? एक अन्य बुद्धिजीवी ने बात को आगे बढ़ाते हुए कहा कि ' सरकारी सप्लाई में गोलमाल व अनियमितता तो बाद की बाद है, पहले तो बंदरों के लिए जंगलों में फल और खाद्य पदार्थ भेजने के लिए ठेकों के आबंटन में ही नेताओं की ख़ूब सिफ़ारिशें चलेंगी। हर लीडर चाहेगा कि ठेका उसके आदमी को मिले। विपक्ष भी हो-हल्ला मचाकर आरोप लगायेगा कि ठेकों के आबंटन में क़ायदे-क़ानूनों की धज्जियाँ उड़ी हैं। हो सकता है कि विपक्ष इस मुद्दे पर विधानसभा कार्रवाही ठप्प कर दे या फिर मुँह पर काली पट्टियाँ बांधकर सदन के बाहर बैठ जाए। विपक्ष अपने कार्यकर्ताओं को चक्का जाम करने के लिए भी कह सकता है। चक्का जाम के दौरान कोई रोगी अस्पताल न पहुँच पाने से अल्लाह को प्यारा भी हो सकता है।

मीडिया के एक साथ चार टॉपिक लग सकते हैं— बंदर, विपक्ष, चक्का जाम और रोगी की मौत। हो सकता है कुछ अख़बार इस पर एडीटोरियल भी लिख डालें । अगर यह मसला सरकार निपटा भी देती है तो भी क्या गारंटी होगी कि बंदरों को जो फल और खाद्य पदार्थ जंगलों में भेजे जायेंगे, उनकी क्वालिटी सही होगी। हो सकता है कि बंदर घटिया सरकारी सप्लाई पर अपना रोष जताते हुए इनके सेवन से मना कर दें और गुस्से में फिर शहरों की तरफ निकल आयें ? एक अन्य बुद्धिजीवी ने कहा कि समस्या का हल तभी हो सकता है, जब बंदरों की नसबंदी कर दी जाए । लेकिन दूसरे बुद्धिजीवी ने उसकी बात काटते हुए कहा कि पहले तो इस बात की कोई गारंटी नहीं है कि बंदर सरकार के हाथ आयेंगे भी कि नहीं। और अगर आ भी गए तो इस बात की भी गारंटी नहीं है कि वे नसबंदी के लिए सहमत हो जायेंगे......। बात को लपकते हुए एक और बुद्धिजीवी ने कहा - ' डोंट वरी, सबसे पहले हम बंदरों को परिवार नियोजन के फ़ायदे बतायेंगे। उन्हें यह भी बतायेंगे कि परिवार नियोजन से जनसं या कंट्रोल में रहती है और जनसं या कंट्रोल में रहने से स्थिति कंट्रोल में रहती है और जब स्थिति कंट्रोल में होती है तो सरकार विकास के लिए योजनाएँ बनाती है और जब विकास के लिए योजनाएँ बनती हैं तो उसमें पैसा इन्वाल्व होता है और जब किसी चीज में पैसा इन्वाल्व होता है तो उसमें टांका लगाने का मौक़ा मिलता है। टांका लोकतंत्र का बुनियादी मंत्र है। नसबंदी में भी टांका ही लगाया जाता है........।

एक अन्य बुद्धिजीवी ने यह कह कर बीच में टोक दिया - ' बंदरों ने अगर आपकी बात सुनने से मना कर दिया तो.....? बंदर यह कहकर भी नसबंदी करवाने से मना कर सकते हैं कि इंडिया के अस्पतालों में आपरेशन करते समय डाक्टर कई बार कैंची, कपड़ा और दूसरे औजार मरीज़ के शरीर में ही छोड़कर टांके लगा देते हैं ... और जब इंसानों की हैल्थ के साथ ऐसी लापरवाही हो सकती है तो फिर बंदर तो बंदर ठहरे। उनके साथ आपरेशन कक्ष में डाक्टर कुछ भी कर सकते हैं । यह भी हो सकता है कि डाक्टर आपरेशन कक्ष में मोबाइल पर किसी नर्स से बतियाने में मशगूल हो जाएँ कि बंदरों की चीरफाड़ करने के बाद उन्हें टांके लगाना ही भूल जाएँ ... । ऐसी स्थिति से बचने के लिए बंदर विदेशों में उन्हें नसबंदी के लिए भेजे जाने की माँग भी कर सकते हैं और सरकार अगर उनकी यह

माँग अस्वीकार कर देती है तो बंदर नसबंदी से ही मना कर सकते हैं। बंदर अगर अड़ जाएँ तो सरकार उनका बिगाड़ भी क्या सकती है? सरकार सिर्फ़ ग़रीब आदमी को ही आँखें दिखा सकती है...।

इस पर एक और बुद्धिजीवी तैश में आते हुए बोले-- बंदरों की ऐसी की तैसी। उन्हें पता नहीं सरकार के पास बहुत बड़ी पॉवर होती है। सरकार अगर कर्मचारियों को दूर-दराज इलाक़ों में फेंक सकती है, अपने राजनैतिक विरोधियों पर झूठे केस बनाकर उन्हें अंदर ठूँस सकती है, तो बंदर किस खेत की मूली हैं ? कई अन्य बुद्धिजीवियों ने हाँ से हाँ मिलाई। अन्त में यह निष्कर्ष निकला कि बंदरों का मसला एक बैठक में नहीं सुलझ सकता लिहाज़ा चर्चा अगली बैठक के लिए टाल दी जाए। इसके साथ ही बैठक में जिन दूसरी समस्याओं पर बुद्धिजीवियों ने चर्चा करनी थी, उसे भी अगली बैठक के लिए टाल दिया गया। अगली बैठक की तारीख अभी मुकर्रर नहीं हुई है क्योंकि बुद्धिजीवी बिजी हो गए हैं। -गुरमीत बेदी



आप तुलना और स्पर्धा की दौड़ में क्यों रहना चाहते हैं?



- जे. कृष्णमूर्ति

जब आपकी तुलना किसी दूसरे से की जाती है आपकी पढ़ाई के बारे में, आपके खेलकूद के बारे में अथवा आपके रूप या चेहरे के बारे में-तब आप व्यग्रता, घबराहट और अनिश्चितता के भाव से भर जाते हैं।

इसलिए यह नितांत आवश्यक है कि हमारे विद्यालय में तुलना का यह एहसास, यह अंक या श्रेणी देना और सबसे बड़ा तो परीक्षा का भूत समाप्त किया जाए।

आप तब बेहतर अध्ययन कर पाते हैं जब स्वतंत्रता रहती है, जब प्रसन्नता रहती है, जब कुछ दिलचस्पी बनी रहती है। आप सब जानते हैं कि जब आप कोई खेल खेल रहे होते हैं, जब आप कोई नाट्य कार्यक्रम कर रहे होते हैं, जब आप चहलकदमी के लिए बाहर जाते हैं, जब आप किसी नदी को निहार रहे होते हैं, जब आप प्रसन्नचित रहते हैं, खूब स्वस्थ रहते हैं तब आप कहीं अधिक सरलता से सीख लेते हैं।

परंतु जब तुलना का, श्रेणी का, परीक्षा का भय सामने खड़ा हो, तब आप न उतना अच्छा सीख पाते हैं, न उतना अच्छा अध्ययन कर पाते हैं। कभी-कभी यह प्रश्न भी सामने आता है कि बिना स्पर्धा किए क्या इस प्रतिस्पर्धी समाज में रहा जा सकता है?

इस प्रश्न को देखें तो हम यह मानकर चलते हैं कि हमें इसी प्रतिस्पर्धी समाज में रहना है और इसलिए हम प्रतिस्पर्धा में बने रहने का विकल्प चुनते हैं। यही वजह है कि यह आधार वाक्य बन गया है। जब तक आप कहते रहेंगे कि मुझे इसी स्पर्धी समाज में रहना है, तब तक आप स्पर्धी ही बने रहेंगे।

यह समाज सफलता का पूजक है और यदि आप सफल बनना चाहते हैं तो स्वाभाविक है कि आपको स्पर्धी रहना होगा। परंतु समस्या केवल स्पर्धा से कहीं अधिक गंभीर है। स्पर्धा करने की इच्छा के पीछे क्या है?

प्रत्येक विद्यालय में हमें स्पर्धी होना ही सिखाया जाता है, है न? अंक देकर, किसी मंद बालक की किसी कुशाग्र बालक से तुलना करके, लगातार इस ओर इशारा करके कि एक निर्धन बालक भी जनरल मोटर्स का अध्यक्ष या सर्वोच्च अधिकारी बन सकता है, या इसी तरह के उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं।

हम स्पर्धा पर इतना बल क्यों देते हैं? इसकी सार्थकता क्या है? स्पर्धा में एक बात तो निश्चित है और वह यह कि इसमें अनुशासन जरूरी है, है न? आपको स्वयं पर नियंत्रण रखना होता है, आपको अनुकरण करना होता है, अनुदेशों का पालन करना होता है, आपको और सब लोगों जैसा होना होता है- बस और बेहतर।

इस प्रकार आप सफल होने के लिए स्वयं को अनुशासित करते हैं। कृपया इसे समझिए। जब भी स्पर्धा को प्रोत्साहित किया जाता है तब क्रियाकलापों के एक विशेष ढर्रे के अनुसार मन को अनुशासित करने की एक प्रक्रिया भी साथ-साथ चलती है।

क्या किसी लड़के या किसी लड़की को नियंत्रित करने के लिए अपनाए जा रहे तरीकों में से ही यह एक तरीका नहीं है? यदि आप कुछ बनना चाहते हैं तो आपको नियंत्रण, अनुशासन और स्पर्धा यह सब तो करना ही होता है। इसी में हम पले-बढ़े हैं और यही हम अपने बच्चों को विरासत में दे रहे हैं।

और फिर भी हम बच्चों को खोजबीन करने की, अन्वेषण करने की, स्वतंत्रता देने की बात करते हैं ? स्पर्धा व्यक्ति के वास्तविक स्वरूप को ढांप देती है। यदि आप स्वयं को समझना चाहते हैं तो क्या आप किसी अन्य से स्पर्धा करेंगे?

इसे यूं देखिए कि क्या आप किसी चित्र को अन्य चित्र के साथ तुलना करके समझ सकते हैं, या उसे आप केवल तभी समझ सकते हैं जब आपका मन बिना किसी तुलना के उसी चित्र को ध्यानपूर्वक देख रहा हो?

स्वयं समझना संपूर्ण जीवन-प्रक्रिया को समझना है और आत्म परिचय से बढ़कर कुछ भी नहीं है और स्पर्धा से मुक्त मन ही स्वयं से परिचित हो सकता है।

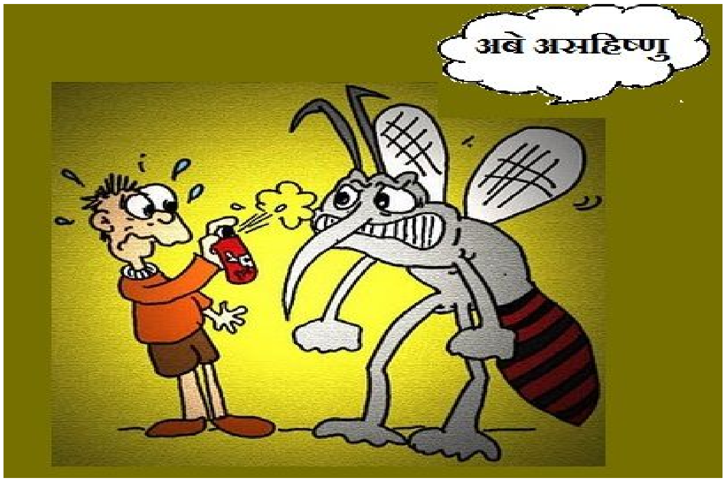
ऐसा मन जिसे किसी तरह के बदलाव से कोई सरोकार नहीं रह जाता, उसे भय नहीं होता और इसलिए वह पूरी तरह मुक्त होता हैतब वह अपने को . किसी अन्य रूप में बदलने, किसी अन्य ढर्रे सा सांचे में ढालने की कोशिश नहीं करता, ना ही वह किसी अनुभव की तलाश में रहता है, ना ही किसी चीज के बारे में कहता'सुनता या किसी तरह की मांग रखता हैतो ऐसा मन पूरी ... वह ही शांत ...तरह मुक्त होता है,स्थिर अचल होता हैऔर तब .., कदाचित वह अस्तित्व में आता है जो अनाम है..

जे कृष्णमूर्ति

स्थाई स्तम्भ हमें मालूम है जन्नत की हक़ीक़त...

(सम-सामयक विष्यों पर चर्चा)

मच्छर व असहिष्णुता



मैं घर में बैठा था,
मेरे इर्द गिर्द कई मच्छर बावेला मचा रहे थे. तभी कुछ मच्छरों ने आकर मेरा खून चूसना शुरू कर दिया।
स्वाभाविक प्रतिक्रिया में मेरा हाथ उठा और बाजु पर सिक्का जमाये बैठे मच्छरों पर चटाक हो गया और दो-एक मच्छर ढेर हो गए.!!
फिर क्या था बाकी के मच्छरों ने शोर मचाना शुरू कर दिया कि मैं असहिष्णु हो गया हूँ.!!
मैंने कहा तुम खून चूसोगे तो मैं मारूंगा ही. इसमें असहिष्णुता की क्या बात है.
वो कहने लगे खून चूसना उनकी आज़ादी है. यह आजादी उन्हें जनम से मिली है. यह उनका जन्मसिद्ध अधिकार है.

"आज़ादी" शब्द सुनते ही कई बुद्धिजीवी मच्छर उनके पक्ष में उतर आये और बहस करने लगे.!!
इसके बाद नारेबाजी शुरू हो गई., "जितने मच्छर मारोगे हर घर से मच्छर निकलेगा".
बुद्धिजीवियों ने अखबारों व मीडिया पर में तपते तर्कों के साथ बड़े-बड़े लेख लिखना शुरू कर दिए.
उनका कहना था कि मच्छर देह पर मौज़ूद तो थे लेकिन खून चूस रहे थे ये कहाँ सिद्ध हुआ है.
अगर चूस भी रहे थे तो भी ये गलत तो हो सकता है, लेकिन 'देहद्रोह' की श्रेणी में नहीं आता, क्योंकि ये "बच्चे" हैं और बहुत ही प्रगतिशील रहे हैं., किसी की भी देह पर बैठ जाना इनका 'अधिकार' रहा

है. आप की देह पर बैठ कर वे आप को चेतन्न करने आए थे. देश मुश्किल दौर से गुज़र रहा है. आप उन्हें खून दो वे आप को आज़ादी देंगे.
मैंने कहा – "मैं अपना खून नहीं चूसने दूंगा बस."
तो कहने लगे ये आप का "एक्सट्रीम देहप्रेम" है. यह एक देह केवल आप की ही धरोहर नहीं है. यह देह देश की अमानत है.
"तुम कट्टरपंथी हो, डिबेट से भाग रहे हो."
मैंने कहा तुम्हारा उदारवाद तुम्हें मेरा खून चूसने की इज़ाज़त नहीं दे सकता.
इस पर उनका तर्क़ था कि भले ही यह गलत हो लेकिन फिर भी थोड़ा खून चूसने से तुम्हारी मौत तो नहीं हो जाती, लेकिन तुमने मासूम मच्छरों की ज़िन्दगी छीन ली. और वे आप का खून थोड़े चूस रहे थे. वे तो आप से देश की आज़ादी के लिए थोडा रक्तदान करने की गुज़ारिश करने आए थे. आप ने उन्हें "फेयर ट्रायल" का मौका भी नहीं दिया और झटका दिया.
इतने में ही कुछ राजनेता भी आ गए और वो उन मच्छरों को अपने बगीचे की 'बहार' का बेटा बताने लगे.!!
हालात से हैरान और परेशान होकर मैंने कहा कि लेकिन ऐसे ही मच्छरों को खून चूसने देने से मलेरिया हो जाता है, तुरंत न सही बाद में बीमार और कमज़ोर होकर मौत हो जाती है.
इस पर वो कहने लगे कि तुम्हारे पास तर्क़ नहीं हैं इसलिए तुम भविष्य की कल्पनाओं के आधार पर अपने 'फासीवादी' फैसले को ठीक ठहरा रहे हो..
मैंने कहा ये साइंटिफिक तथ्य है कि मच्छरों के काटने से मलेरिया होता है., मुझे इससे पहले अतीत में भी ये झेलना पड़ा है.!!
पर मेरा तर्क उन्हें समझ में नहीं आया!!
तथ्य के जवाब में वो कहने लगे कि मैं इतिहास में जी रहा हूँ और मच्छर समाज के प्रति अपनी घृणा का बहाना बना रहा हूँ., जबकि मुझे वर्तमान में जीना चाहिए.
इतने हंगामें के बाद उन्होंने मेरे पर माहौल बिगाड़ने का आरोप भी मढ़ दिया.!!!
मेरे ख़िलाफ़ मेरे कान में घुसकर सारे मच्छर भिन्नाने लगे,
"हम लेके रहेंगे आज़ादी".!!!
"लेके रहेंगे आज़ादी".!!!
मैं बहस और विवाद में पड़कर परेशान हो रहा था. उससे ज़्यादा जितना कि खून चूसे जाने पर हुआ था.
मच्छर चले गए. मैं कुछ सीरियस हो गया.
आचार्य चाणक्य द्वारा कही एक बात याद आती है— की "जब समाज के अति विद्वान् लोग नाराज होने लगें तब प्रसन्नता पूर्वक यह समझ लेना चाहिए कि, राजा की व्यवस्था बहुत बढ़िया ढंग से कार्य कर रही है।" तो क्या चाणक्य

ऐसी राज्य वयवस्था की बात ही करते रहे हैं जो बुद्धि व बौद्धिक लोगों के प्रतिकूल हो. जो सिर्फ डंडे से ही कंट्रोल होती हो.

क्या चाणक्य सही थे अगर हाँ तो क्या भारत कभी भी सहिष्णु नहीं था. आखिर आप कब थे सहिष्णु?

परशुराम के क्षत्रिय संहार के समय,बौद्धों के कत्लेआम के वक़्त या महाभारत युद्ध के दौरान लंका में आग लगाते हुए या खांडव वन जलाते हुये, कुछ याद पड़ता है?

आखिरी बार कब थे आप सहिष्णु?

या तब थे आप सहिष्णु जब ब्रह्मा ने बनाये थे वर्ण रच डाली थी ऊँच नीच भरी सृष्टि या तब, जब विषमता के जनक ने लिखी थी विषैली मनुस्मृति जिसने औरत को सिर्फ भोगने की वस्तु बना दिया था, शूद्रों से छीन लिए गए थे तमाम अधिकार रह गए थे उनके पास महज़ कर्तव्य सेवा करना ही उनका जीवनोद्देश्य बन गया था और अछूत धकेल दिये गए थे गाँव के दख्खन टोलों में, लटका दी गई थी गले में हंडिया और पीठ पर झाड़ू निकल सकते थे वे सिर्फ भरी दुपहरी ताकि उनकी छाया भी ना पड़े तुम पर इन्सान को अछूत बनाकर उसकी छाया तक से परहेज़ ! क्या ये नहीं थी असहिष्णुता ?

ऊपर वाला भी हँसता होगा हम ये देख कर की मन्दिर को तोड़कर, मस्जिद बनाली तो क्या हुआ! तुम मस्जिद को तोड़कर अब, मन्दिर बनालो! ऊपर बैठा हुआ वो हंस रहा होगा…. मेरे ही घर को तोड़ तोड कर, कब तक बनाओगे, मैने तो वहाँ रहना, कबका छोड़ दिया है। मै तो रहता हूँ, मानव के हृदय में.

जाओ अब हृदय को भी बाँट दो धर्म के नाम पर?

विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है हमारा देश हमे गर्व भी है पर क्या यहाँ सम्पूर्ण लोकतंत्र है...?

> शब्द खतरनाक वस्तु हैं। सर्वाधिक खतरे की बात तो यह है कि वे हमसे यह कल्पना करा लेते हैं कि हम बातों को समझते हैं जबकि वास्तव में हम नहीं समझते।
>
> **- चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य**

जब हम ध्यान करते हैं तो ध्यान हमारे भीतर उतरता है

- जे. कृष्णमूर्ति

'जब हम ध्यान करते हैं तो अपने भीतर को समझने के प्रयास पर होते हैं। वहां तथ्य नहीं होते बल्कि अनुभव ही होते हैं। वहां खोज नहीं बस एक शांति होती है।'

ध्यान, निस्तब्ध और सुनसान मार्ग पर इस तरह उतरता है जैसे पहाड़ियों पर सौम्य वर्षा। यह इसी तरह सहज और प्राकृतिक रूप से आता है जैसे रात। वहां किसी तरह का प्रयास या केन्द्रीकरण या विक्षेप विकर्षण पर किसी भी तरह का नियंत्रण नहीं होता। वहां पर कोई भी आज्ञा या नकल नहीं होती। ना किसी तरह का नकार होता है ना स्वीकार। ना ही ध्यान में स्मृति की निरंतरता होती है।

मस्तिष्क अपने परिवेश के प्रति जागरूक रहता है पर बिना किसी प्रतिक्रिया के शांत रहता है, बिना किसी दखलंदाजी के, वह जागता तो है पर प्रतिक्रियाहीन होता है।

वहां नितांत शांति स्तब्धता होती है पर शब्द विचारों के साथ धुंधले पड़ जाते हैं। वहां अनूठी और निराली ऊर्जा होती है, उसे कोई भी नाम दें, वह जो भी हो उसका महत्व नहीं है, वह गहनतापूर्वक सक्रिय होती है बिना किसी लक्ष्य और उद्देश्य के।

विचार और भाव या अहसास उसको जानने समझने के साधन नहीं हो सकते। वह किसी भी चीज से पूर्णतया असम्बद्ध है और अपने ही असीम विस्तार और अनन्तता में अकेली ही रहती है। उस अंधेरे मार्ग पर चलना, वहां पर असंभवता का आनंद होता है ना कि उपलब्धि का।

वहां पहुंच, सफलता और ऐसी ही अन्यान्य बचकानी मांगों और प्रतिक्रियाओं का अभाव होता है। होता है तो बस असंभव असंभवता असंभाव्य का अकेलापन। जो भी संभव है वह यांत्रिक है और असंभव की परिकल्पना की जा सके तो कोशिश करने पर उसे उपलब्ध किए जा सकने के कारण वह भी यांत्रिक हो जाएगा।

उस आनन्द का कोई कारण या कारक नहीं होता। वह बस सहजत: होती है, किसी अनुभव की तरह नहीं बस अपितु किसी तथ्य की तरह। किसी के स्वीकारने या नकारने के लिए नहीं, उस पर वार्तालाप या वाद विवाद या चीर फाड़-विश्लेषण किए जाएं इसके लिए भी नहीं।

वह कोई चीज नहीं कि उसे खोजा जाए, उस तक पहुंचने का कोई मार्ग नहीं। सब कुछ उस एक के लिए मरता है, वहां मृत्यु और संहार प्रेम है। क्या आपने भी कभी देखा है- कहीं बाहर, गंदे मैले कुचैले कपड़े पहने एक मजदूर किसान को जो सांझ ढले अपनी मरियल हड्डियों का ढांचा रह गई गाय के साथ घर लौटता है।



गुमशुदा

- तृषि शर्मा

राहों का सन्नाटा ऐसे रूह में समा जाएगा
कि अपने भीतर छिपे बन्दे से तू अनजाना रह जाएगा
बनते दूसरों की खुशियों का कारण
तू अपनी खुशियाँ से बेगाना रह जाएगा
ऐ बन्दे तू कब तक यूँ ही चलता जाएगा ?

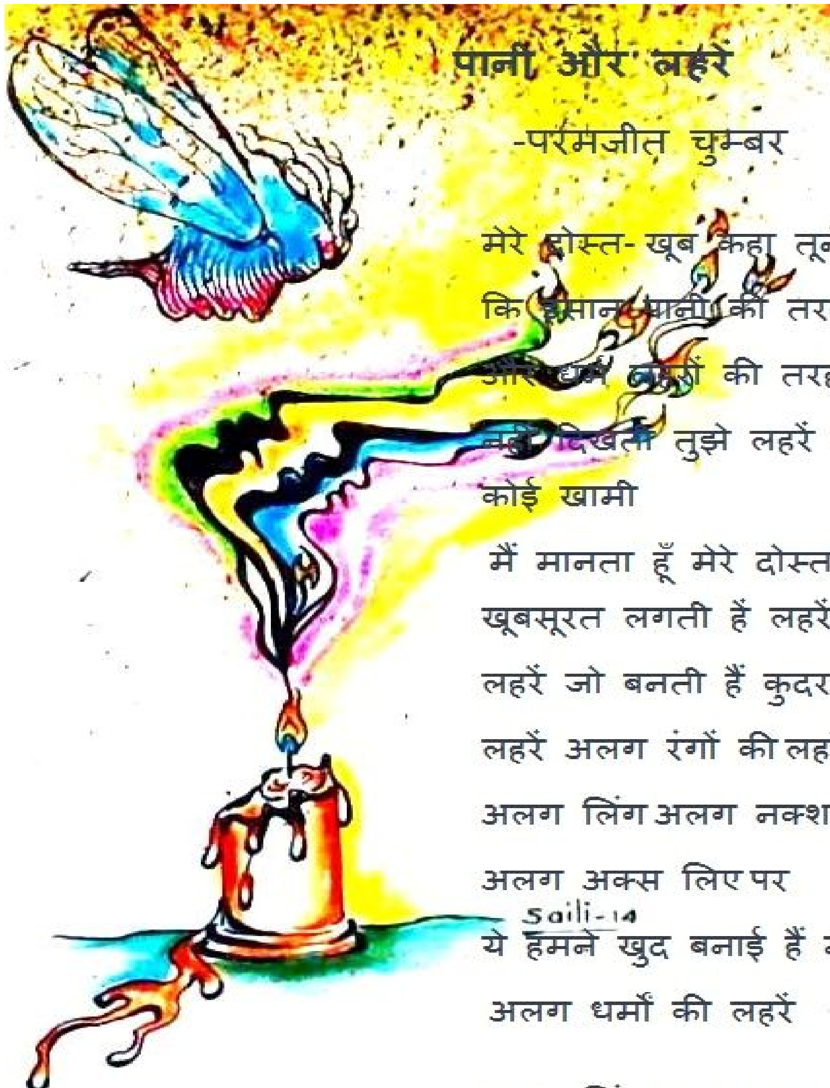
अपने बल से बलहीन को तो चुप करा पाएगा
पर कहाँ फिर वो दुनिया से प्यार का लफ्ज़ सुन पाएगा
अपनी दौलत शोहरत से गरीब का घर तो उजाड़ पाएगा
पर कौन सी दुकान से अपनी खुशियाँ खरीद पाएगा
ऐ बन्दे तू कब तक यूँ ही चलता जाएगा?

चाल तेरी मद्धम है, चल नही रेंग रहा है तू
संग तेरे सारे है पर अकेला कहीं खो गया है तू
जलता तपता तू रात को भागने के सपने देखता है
पर फिर भी चलती ज़िन्दगी में सो गया है तू
बता बन्दे तू कब तक यूँ ही चलता जाएगा ?
साँसों का क़र्ज़ एक दिन तुझे, अकेले को चुकाना है
कर्मों का मोल एक दिन, खुद ही को भुगताना है
जब अकेले का ही रास्ता एक दिन शमशान तक जाना है
मोक्ष का वहम सीने में ले कर
तो क्यूँ यूँ ही गुमशुदा बन दिन गिने जाएगा ?
ऐ बन्दे तू कब तक यूँ ही चलता जाएगा?
- तृषि शर्मा



(1) मृत्यु....
नैराश्य......
सुकून.......
निष्तेज......
सबका विराम
एक महानिर्वाण
एक नींद
छिपी हुई समय की
अपूर्ण गर्भ में
अविकसित भ्रूण.....
एक सिमटी हुई
रात के अँधेरे में....
मेरी काली बदरंग
विभत्स अंतस में
जो अक्सर चीत्कार करती है, एक रोज़
अचानक ही सुना मैंने
निःशब्द खिलखिलाहट
मासूम सी....
अपनत्व भरी
यह मृत्यु थी
मेरी चौखट पर
लिए सम्पूर्ण अँधेरा
एक शून्य.....
और मैं.....
तैयार था
एक नई शुरुआत के लिए
पतन की ओर उन्मुख
की नया उत्थान हो
नया इंसान हो

(2) मेरी कब्र पर उगा नीला फूल
मैं देखता हूँ प्रिये
और साथ ही देखता हूँ
तुम्हारी गोद में खेलती
ढेरों सीपियाँ
मैं चूमता हूँ तुम्हे
नदियों में बह कर
काश तुम इस तरह
सिमटी ना होती
काश तुम भी होती कोई
मासूम से मालन
और हर सुबह मुझे
चुन लेती
मेरी शाख से......
काले कौए इस तरह से
फैले हैं
जैसे,
आसमां काला हो
फिज़ायें काली हों
हवा में भी कालिख है,
मैं पूछता हूँ?
ये क्या संदेश लाये हैं,
इस से पहले वो कुछ कहें,
मेरे तस्वर पर
लिख गए हैं,
मैं काल का एक
कल हूँ,
कभी इसका शिकार हूँ,कभी ये मेरा.....



पानी और लहरें

-परमजीत चुम्बर

मेरे दोस्त- खूब कहा तूने
कि इंसान पानी की तरह है ,
और उसमें लहरों की तरह
नहीं दिखती तुझे लहरें बनने में
कोई खामी

मैं मानता हूँ मेरे दोस्त कि
खूबसूरत लगती हैं लहरें
लहरें जो बनती हैं कुदरती
लहरें अलग रंगों की लहरें
अलग लिंग अलग नक्श लिए लहरें
अलग अक्स लिए पर
ये हमने खुद बनाई हैं मेरे यार
अलग धर्मों की लहरें

अलग लिंग अलग नक्श लिए लहरें

जात पात की लहरें
जो अक्सर बन जाती हैं सुनामी
तहस -नहस कर देती हैं सब कुछ
इंसानियत तो है शान्त पानी की तरह
सिर्फ जिंदगी देने के लिए ..
तो ..पानी ही बना रह ..मेरे दोस्त लहर नहीं
जिंदगी बन कहर नहीं ....



(डॉ) विजय शंकर (यू.एस.ए.)

डॉ० स्वर्ण ओमकार जी,

नव वर्ष मंगलमय हो। "तुम्ही से" के कई पेज मैंने देखे हैं, विशेषतः सम्पादकीय। पर कुछ पारिवारिक व्यस्ताओं के चलते लिख नहीं पाया , हाँ इस बीच नाना अवश्य बन गया। विदेश में व्यस्तताओं का स्वरुप थोड़ा भिन्न होता है पर आप जैसे मित्रों के लिए तो हर हाल में समय है और आगे भी रहेगा।

मूल विषय पर आते हैं, आप लिखते अच्छा हो, सोच कर लिखते हो। सामयिक विषय पर लिखते हैं, आपने, सम्पादकीय में, जो एक आम आदमी का चित्र अंकित किया है वह हर देश के साधारण आदमी जैसा ही सामान्य व्यक्ति है पर वह कुछ असामान्य परिस्थितयों में फंसा हुआ आदमी है जो सिर्फ हमारे देश में ही हो सकती हैं। शायद हमारी सबसे बड़ी समस्या यह है कि हम सांसारिक ज्ञान के ऊपर अपना ज्ञान लाद देते हैं ,और स्वयं को अत्य-आधुनिक बताते हुए अपनी संस्कृति के तत्वों को उपेक्षित करते रहते हैं। उदाहरण के लिए हमारी सहिष्णुता और साम्प्रदायिकता की विश्व की अपनी अनूठी ही परिभाषायें और समझ है, अतः परिणाम भी वैसे ही हैं।

हमने जनतंत्र अपनाया है, पर हमारे अधिनायक मध्य - युगीन वंशवाद - सामन्तवादी परम्परा के ही पोषक हैं, वे यह मानने को तैयार ही नहीं हैं जनतंत्र में जन भी कुछ होता है, वे उसे अभी भी वैसे ही लेते हैं जैसे विदेशी शासक लेते थे। दुनियाँ में आम आदमी के सारी दुनियाँ में छोटे छोटे, सामान्य से सपने होते हैं और वह उन्हीं के पूर्ण

तुम्ही से का आगामी अंक: चेतना क्या है

होने में अपनी खुशी ढूँढता है। पर हमारे कर्णधार नहीं मुहय्या कराते बल्कि हर आदमी को बताते हैं कि तुम मंत्री, मुख्यमंत्री बनने रखते हो। तुम बहुत काबिल हो , जैसे भी हो , वैसे ही रहो , सबकुछ तुम्हें उसी हाल में मिलेगा। संदेह नहीं कि ऐसे में वह पाता क्या है यह तो वही जाने वह उनका आश्रित अवश्य बन जाता है।

अब सोचिये , कितना आसान है , इस तरह के सपने दिखाना , न शिक्षा की जरूरत , स्कूल की। कितना कठिन है सारे देश को स्कूल देना, अपने पैरों पर खड़े सामर्थ्य देना , और कितना आसान है इस तरह के सपने दिखा कर अपनी सत्ता जमाये रखना। इसके लिए उन्हें क्या करना पड़ता है, कुछ नहीं। एक स्कूल खोलने में तो बहुत कुछ करना पड़ता है , उससे भी कितने लोग खुश होगें, इससे तो सारा देश खुश, सपने में खो जाता है और ऊपर बहुत ऊपर पहुँचने के नैतिक - अनैतिक, धार्मिक, जादू - टोने, रिश्वत, क्राइम आदि आदि को कौन से तरीके नहीं अपनाने लगता है, पाता क्या है ? हम इसे जनतंत्र कहते हैं, यही है हमारी जनतंत्र की परिभाषा।

जनतंत्र का ऐतिहासिक स्वरुप का अभी - अभी times now पर कर्नाटक सम्बन्धी वीडियो भी आपने देखा होगा। मध्य - युगीन लगा कि नहीं ? इंग्लैंड में एक कॉस्टेबल से अभद्र ढंग से बात करने मात्र से एक जनप्रतिनिधि का राजनैतिक जीवन समाप्त हो गया।

वैसे यह जनतंत्र हमें अंग्रेज ही दे गए , उसे अपने रंग - रूप में हमने खुद ढाल लिया है। हमें कुछ भी देदो , हम उसका ऐसा रूप बना देंगें कि दंग रह जाओगे।

टैक्स आप हर चीज़ का दो, तकलीफें आप झेलो , सफाई आप खुद करों, क्यों , टैक्स के पैसे क्या हुए, इतने सफाई कर्मी हैं, फिर भी इतनी गन्दगी, स्वाभाविक है उसी अनुपात में डाक्टर बढ़ेंगें, दवाइयाँ बिकेंगी, सब भाग्य हैं, व्यवस्था का कहीं कोई दोष नहीं है।

वास्तविकता यह है कि जनता के लिए काम करो तो क्यों नहीं होगा , जनता के नाम पर अपने लिए करोगे तो अपने लिए होगा।

समस्याएं हैं, समाधान भी हैं , बस सही दिशा नहीं है। क्योंकि लाभ इसी दिशा है।

आगे इस पर विचार करना चाहें। ...

एक निवेदन है , स तीन प्रकार होते हैं, स, ष, श। स को दन्त स कहते हैं, ष मूलन्द स कहते हैं और श तालव्य तीनों के प्रयोग में ध्यान अपेक्षित है, टायपिस्ट को इंगित करेंगे। शासन शब्द है।

चलिए लिखते रहेंगे .... आपको इस सार्थक प्रयास पर ढेरों बधाइयां।

सादर। विजय शंकर (डॉ)

शुभकर्मण सिंह, Govt. MedicalCollege, Amritsar

Sir i have read tumhe se today . Ur concept on knowledge and understanding is very nyc . And also there are some very nyc contributions

from trishi sharma dr mohan ji indu lekhi. It is a wonderful litrary nowdays. But at same time i think to retain orignal essence of literature it is best served as orignal. Also i await in next part more english literature and your more and more writtings in magazine attempt.Comprehension of hindi text had always been mine problem which i think is true for more students PART2 HIGHLY अवेटेड -शुभकर्मण सिंह

डॉ परमजीत चुम्बर साइकेट्रिस्ट यू इस ए

गुड एफर्ट डॉ. स्वर्ण ओमकार - माय congratulations एंड गुड विशेस

डॉ मोहन बेगोवाल मेडिकल कॉलेज अमृतसर

इंदु लेखी की कविता बनाम फूल की पत्ती सुंदर अर्थ देती, इस समय की सचाई को पकड़ती, कमाल की रचना के लिए बधाई

तृषि शर्मा, Govt. MedicalCollege, Amritsar recieving comments upon Sir issue was published with lots of work was required. Afterall responses lead to further course of thinking...Rest layout and immense efforts of yours were really appreciable efforts. But response to writing may not be acheived. As you thought of

Inderjit AhluWalia
Tum hi say ka pihla ank peda bahut hi jaanverdak or poems lajabab hats off to you

(मेरी अपनी प्रतिक्रिया) डॉ॰ स्वर्ण ओमकार

मेरे दोस्तों की दरया दिली Dard-e- dil direct from Facebook *यह मैंने पहले भी कई बार महसूस किया है लेकिन इस बार तो कुछ ज्यादा ही हो गया. पहले से ही मैं जानता था की मेरे दोस्त बड़े दर्यादिल हैं. वे मेरी पोस्ट्स के सेन्ट्रल आईडिया को समझते है. और उस पर मेरे कहने मुताबिक तह दिल से अमल करते है. जैसे अगर मैं कहता हूँ कि ज्यादा ज्ञान जमा नहीं करना चाहिए और यह हमारा निरंकुश ज्ञान ही है जो हमे लाइफ में सीध देने की बजांये हमें ज्ञान व ज्ञानवान लोगों की गुलामी (जिसे हम गलती से श्रद्धा कहते हैं) करने को प्रेरित करता है. तो इस तरह की पोस्ट को पढ़ने की बजाये वे सीधा अमल में लाना पसंद करते हैं. यानि ऐसी पोस्टों को वे पढ़ते ही नहीं.* अगर में अपनी धुन में लगा रहूँ और दोस्तों की इस दर्यादिली को न समझूँ और यह सोचूं कि कुछ कठिन लिखा गया होगा जो दोस्तों ने ज्यादा मानसिक मेहनत करने की बजाये उसे "देख के अणडिठ" कर दिया होगा. इस के एवज में मैं

अगर अपनी मानसिक फैकल्टीज को फिर से पुरे जोरशोर से काम में ला कर "हिंदी या पंजाबी" भाषा में ट्रांसलेशन कर के, कठिन शब्दों को चुन चुन कर वहां आसान व आम बोल चाल की भाषा के शब्द भरूँ तो अगर फिर दुबारा दोस्त वही दर्यादिली दिखाएँ तो मैं सर धुनने के इलावा और कुछ नहीं कर सकता हाँ ज्यादा से ज्यादा नै पोस्ट लिख सकता हूँ.

"तुम्ही से" को मैंने एक मैगज़ीन का रूप देना चाहा. कोशिश की कि दोस्तों को इनवॉल्व करूँ. हम सृजन का कुछ बेहतर अर्थ समझें और गहरे अंतर में व्यापित अपनी सृजनात्मिक्ता को बाहर निकालें. सूए दोस्तों से साझा करें तो यहाँ भी दोस्तों ने वही दरया दिली दिखाई. उन्होंने नए वर्ष के बधाई सन्देश के साथ "तुम्ही से" मैगज़ीन की "कवर फोटो" को केवल एक अच्छा "बधाई सन्देश" मान कर फट से like किया और अगले सन्देश की तरफ रुख किया. मैंने और ढीठताई बरती और हर एक दुसरे दिन "तुम्ही से" को नए नए angle से शेयर किया तो दोस्तों ने अपनी "सुपरिचित दरया दिली को और आगे ले कर एक बार फिर ऐसी पोस्टों को बढ़िया तरीके से "रिजेक्ट" किया. और कुछ इक ने "गुड" "congratulations " और इतियादी दिल लुभावने संदेशों से "जले पर पानी छिटका" जिस के लिए मैं उन का तहेदिल से आभारी हूँ."

अभी तक इस "दुनिया की आठवीं नविन दसवीं हैरानी" से अब तक उभर नहीं पा रहा हूँ कि २४ में से २० घंटे फेसबुक पर विराजमान मेरे दोस्तों ने ऐसा दर्यादिली का पाठ कहाँ से सीखा. और उस से भी ज्यादा जिन दोस्तों को मैंने "तुम्ही से" में लेखक तौर पर शामिल किया उन्होंने भी अपने इस दोस्त की नई कोशिश को तहेदिल से रिजेक्ट कर दिया. मैं मनाता हूँ के फेसबुक पर पोस्टों की भरमार है. और एक आम इंसान के पास इतना समय नहीं की वह हर पोस्ट को पढ़ सके या उस पर कोई प्रस्ताव पेश कर सके. पर फिर भी मन में अतिरिक्त ढीठताई ले कर सोचता हूँ की मैं अभी भी दोस्तों के "बढ़िया मन- मस्तिष्क" के तुल्य लिख नहीं पा रहा हूँ और मुझे और कोशिश करनी चाहिए.

डॉ० स्वर्ण ओमकार

हट जाओ, जब तक लोग यह पूछते हैं कि हटता क्यों है। उस समय तक मत रुको, जब लोग कहना शुरू कर दें कि हटता क्यों नहीं है?

रामधारी सिंह दिनकर

हमारी फिल्मी शायरी
(स्थाई स्तम्भ)

गाना / Title: सीने में जलन आँखों में तूफ़ान सा क्यों है - siine me.n jalan aa.Nkho.n me.n tuufaan saa kyo.N hai

चित्रपट / Film: Gaman

संगीतकार / Music Director: Jaidev

गीतकार / Lyricist: Shahryar

गायक / Singer(s): सुरेश वाडकर- (Suresh Wadkar)



शहरयार

सीने में जलन आँखों में तूफ़ान सा क्यूँ है
इस शहर में हर शख़्स परेशान सा क्यूँ है

दिल है तो धड़कने का बहाना कोई ढूँढे
पत्थर की तरह बेहिस-ओ-बेजान सा क्यूँ है

तन्हाई की ये कौन सी मन्ज़िल है रफ़ीक़ो
ता-हद्द-ए-नज़र एक बयाबान सा क्यूँ है

हम ने तो कोई बात निकाली नहीं ग़म की
वो ज़ूद-ए-पशेमान पशेमान सा क्यूँ है

क्या कोई नई बात नज़र आती है हम में
आईना हमें देख के हैरान सा क्यूँ है

आज के प्रसिद्ध शायर पुस्तक "शहरयार : " में जानेमाने लेखककमलेश्वरलिखते " :हैं **हिन्दुस्तानी अदब में शहरयार वो नाम है जिसने छठे दशक की शुरूआत में शायरी के साथ उर्दू अदब की दुनिया में अपना सफ़र शुरू किया। यह दौर वह था जब उर्दू शायरी में दो धाराएँ बह रही थीं और दोनों के अपने अलगअलग रास्ते - अलग मंज़िलें थीं। ए-और अलगक शायरी वह थी जो परम्परा को नकार कर बग़ावत को सबकुछ मानते हुए नएपन पर ज़ोर दे रही थी और दूसरी अनुभूति, शैली और जदीदियत की अभिव्यक्ति के बिना पर नया होने का दावा कर रही थी और साथ ही अपनी परम्परा को भी सहेजे थी शहरयार ने अपनी शायरी के ! लिए इस दूसरी धारा केसाथ एक नए निखरे और बिल्कुल अलग अन्दाज़ को चुना—और यह अन्दाज़ नतीजा था और उनके गहरे समाजी तजुर्बे का, जिसकी तहत उन्होंने यह तय कर लिया था कि बिना वस्तुपरक वैज्ञानिक सोच के दुनिया**

में कोई कारगर रचनात्मक सपना नहीं- देखा जा सकता। उसके बाद वे अपनी तनहाइयों और वीरानियों के साथसाथ - दुनिया की खुशहाली और अमन का !सपना पूरा करने में लगे रहे कुँवर अख़लाक मोहम्मद खाँ उर्फ शहरयार का जन्म ६ जून १९३६ को आंवला, जिला बरेली में हुआ। वैसे क़दीमी रहने वाले वह चौढ़ेरा बन्नेशरीफ़, जिला बुलंदशहर के हैं। वालिद पुलिस अफसर थे और जगहज-गह तबादलों पर रहते थे इसलिए आरम्भिक पढ़ाई हरदोई में पूरी करने के बाद इन्हें १९४८ में अलीगढ़ भेज दिया गया। वह कदकाठी - से मज़बूत और सजीले थे। अच्छे खिलाड़ी और एथलीट भी थे और वालिद क़दमों की यह इच्छा थी कि ये उन्हीं के पर चलते हुए पुलिस अफसर बन जाएँ। लेकिन तमाम कोशिशों के बावजूद ऐसा हो न सका। आगे चलकर सन् १९६१ में उन्होंने अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय से उर्दू में एमकिया। विद्यार्थी जीवन .ए. मुअल्ला के सैक्रेटरी -उर्दू-ए-में ही अंजुमन और`अलीगढ़ मैगज़ीन' के सम्पादक बना दिए गए और तभी से इनके इरादों ने पकना शुरू कर दिया। अपने इलाके की सांझी तहजीब ने इनके लिए मज़हब का रूप अख्तियार कर लियाउर्दू और ! हिन्दी भाषा के बीच दीवार बनावटी नज़र में ही शहरयार १९६६आने लगी। सन् विश्वविद्यालय के उर्दू विभाग में प्रवक्ता में ही १९६५जबकि सन् नियुक्त हुए

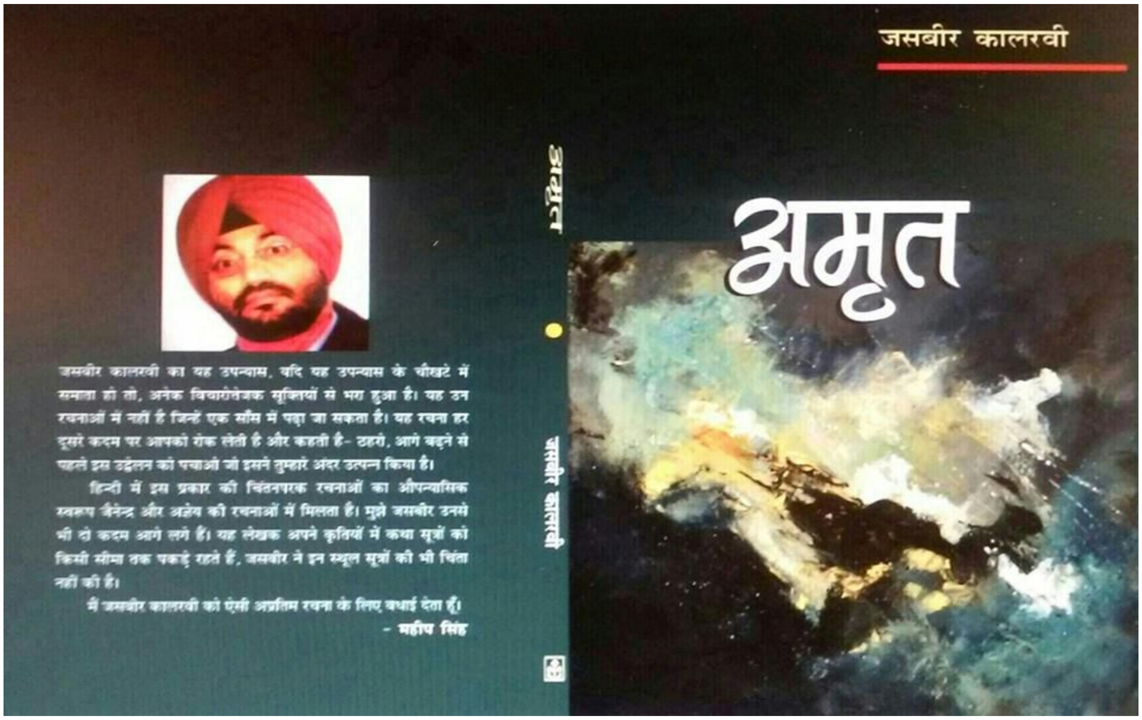
इनका पहला काव्य संग्रह`इस्मेआज़म-' प्रकाशित हो चुका था १९८३इसके बाद ! में वहीं प्रोफ़ेसर हो १९८७में रीडर और -में इसका दूसरी काव्य १९६९सन् !गए संग्रह`सातवाँ दर' छपा। फिर 'हिज्र के मौसम' १९७८ में, फिर १९८५ में 'ख्याल का दर बन्द है' प्रकाशित हुआ और इसे साहित्य अकादमी अवार्ड से नवाज़ा गया में १९९५इसके बाद !`नींद की किरचें' प्रकाशित हुआ। सिलसिला अब भी ज़ारी है और शहरयार बदस्तूर शे'र कह रहे हैं। और अब तो इनका समूचा काव्य लेखन नागरी लिपि में भी आ गया है और हिन्दीभाषी लोगों ने भी भरपूर स्वागत किया।

आप की प्रतिक्रिया हमारे लिये अमुल्य है

हमारा यह प्रयास आप के सहयोग के बिना अधूरा है.

आप का एक मात्र सहयोग आप की प्रतिक्रिया है.आप फेस बुक या इ-मेल या से भी अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त कर सकते हैं. आप हमें बतायें कि हमारे प्रयास में क्या अधूरा है अभी संपरक सूत्र- इ-मेल- abcinnerworld@gmail.com

Facebook
https://www.facebook.com/groups/1641827909407252/



अमृत (उपन्यास)

प्रकाशक : अयन प्रकाशन , नई दिल्ली

जसबीर कालरवी का यह उपन्यास जिसके बारे में प्रख्यात साहित्यकार महीप सिंह लिखते है- यदि यह उपन्यास के चौखटे में मानना हो तो अनेक विचारोत्तेजक सूक्तियों से भरा हुआ है. यह उन रचनाओं में नहीं है जिन्हे एक ही सांस में पढ़ा जा सकता है. यह रचना हर दुसरे कदम पर आप को रोक लेती है और कहती है - ठहरो आगे बढ़ने से पहले इस उन्दलवन को पचाओ जो इस ने तुम्हारे अंदर उत्पन्न किया है. हिंदी में चिंतन परक रचनाओं का औपन्यासिक रूप जैनेन्द्र और अज्ञेय जी की रचनाओं में मिलता है. मुझे जसबीर उन से भी दो कदम आगे लगे है. ये लेखक अपनी कृतियों में कथा सूत्रों को किसी सीमा तक पकडे रहते हैं. जसबीर ने इन स्थूल सूत्रों की भी चिंता नहीं की है.

Tumhi se- तुम्ही से (Hindi Literary Magazine)
March- June 2016
नव आस्तित्व की तलाश
Editor- Dr. Swaran J. Omcawr Executive- Editor- Krishna Eswarn
e-mail: abcinnerworld@gmail.com Website: abcinnerworld.com